॥ ओ३म् ॥

वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला

प्रवक्ता

ब्र० स्वामी नित्यानन्द जी महाराज

प्रकाशक

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क देहली

१९६१] [मूल्य २)

प्रकाशक

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८ नई सड़क, देहली



द्वितीय संस्करण
अगस्त १९६१





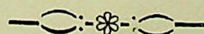
मूल्य : २) दो रुपया



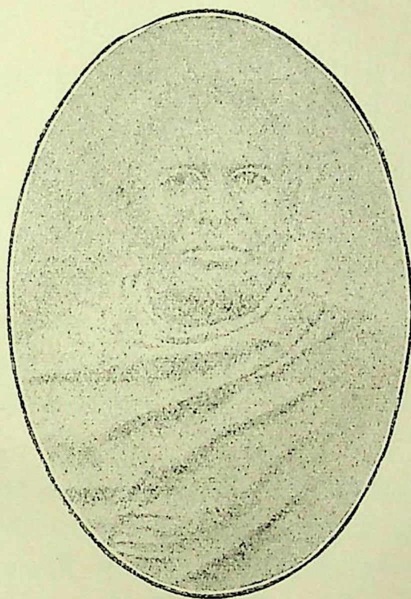
मुद्रक

अनिल प्रिंटिंग ऐजन्सी द्वारा
कलर प्रिंटिंग प्रेस देहली
में मुद्रित ।

विषय सूची



इस विशेषाक का मूल्य २)



स्व० ब्र० स्वामी नित्यानन्द जी महाराज

ब्रह्म० नित्यानन्द जी की जीवन झांकी

[ले० ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी, विद्यावाचस्पति]

जब पाठक किसी पुस्तक को पढ़ते हैं तो उनके हृदय में लेखक के सम्बन्ध में कुछ जानने की इच्छा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। लीजिये हम आप की इच्छा पूर्त्यर्थ स्वामी जी की संक्षिप्त जीवन झांकी प्रस्तुत करते हैं।

जन्म

भाद्रपद शुक्ला १४, संवत् १९१७ को स्वामी जी का जन्म राजस्थान के जालौर नामक स्थान पर हुआ। आप के पिता जी का नाम श्री पं० पुरुषोत्तम जी और माता जी का नाम श्रीमती कृष्णा देवी था। आप श्रीमाली ब्राह्मण थे और विद्याभ्यास आपको पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला था। आप के जन्म का नाम रामदत्त था। बाल्यकाल का विशेष वृतान्त नहीं मिलता। हां इतना निश्चय है कि उनका सम्बन्ध माता पिता की अपेक्षा नाना जी से अधिक रहा, और उन्हीं से आपने सन्ध्या वन्दन आदि कृत्यों का अनुष्ठान और धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया।

आरम्भिक शिक्षा

आरम्भ में आप अपने नाना जी से अध्ययन करते रहे। बाल्यकाल में ही उन्होंने सहस्रों श्लोक और सुन्दरदास आदि के कवित्त कण्ठस्थ कर लिये। अपने नाना जी से उन्होंने वेद का भी कुछ अध्ययन किया। परन्तु जब उनके पास सिखाने के लिये कुछ न रहा तो वे काशी आदि जाकर अध्ययन करने के लिये व्याकुल हो गये। तब उन्होंने अपनी यह इच्छा पिता जी के समक्ष रक्खी तो पिता जी ने बहुत समझाया, माता जी ने आंसू बहाये परन्तु बालक रामदत्त अपने संकल्प पर अटल रहे, और चुपचाप घर छोड़कर जाने की योजना बनाते रहे। लगभग १६ वर्ष की आयु में आप माता पिता के प्यार और दुलार को छोड़ जालौर से अहमदाबाद की ओर चल पड़े तथा

एक ही बार ऐसे निकले कि फिर कभी लौट कर घर नहीं आये। वे परिव्राजक बन गये और जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया था उसे अपने तक ही सीमित न रखकर जन जन में उसे बांटने लगे और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का नाद बजाने लगे।

अहमदाबाद, बम्बई आदि की यात्रा

अहमदाबाद में वे एक जैन साधु के सम्पर्क में आये और उनसे जैनधर्म और दर्शन का अध्ययन किया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि यहां से अब और कुछ मिलने की आशा नहीं तो वे पैदल ही काशी की ओर चल पड़े। परन्तु काशी पहुँचने से पूर्व वे बम्बई गये। वहां से पूना का ऐतिहासिक नगर देखने के लिए पग बढ़ाये, पूना के दर्शन कर वे सितारा आये।

काशी निवास और अध्ययन

इस प्रकार कुछ दिनों भारत के प्रसिद्ध नगरों का भ्रमण करते हुए वे अन्त में काशी जा पहुँचे और यहां स्थायी रूप से कुछ वर्ष के लिये जम गये और विद्याध्ययन आरम्भ किया। उस समय के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों के चरणों में बैठकर उन्होंने धर्म दर्शन तथा अन्य ग्रन्थों को पढ़ा।

विद्या समाप्ति के समय आपकी अवस्था लगभग २० वर्ष की थी। आप आंगल भाषा और संस्कृत के असाधारण विद्वान् थे। आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। आप का शरीर ब्रह्मचर्य के तेज से देदीप्यमान दिखाई देता था। मुख मण्डल बड़ा ही लावण्य और आभा युक्त था। वाणी अत्यन्त मधुर थी तथा उस पर सरस्वती नाचती थी। आप के व्याख्यान बड़े ही प्रभावशाली और ओजस्वी हुआ करते थे।

पुनः भ्रमण और उपदेश

विद्या समाप्त हुई। अब आप तप, तेज और ज्ञान ज्योति से युक्त थे अतः स्थान-स्थान पर धर्मोपदेश करने लगे। वे प्रायः रामायण की कथा किया करते थे और कथा करते करते ऐसे आत्म विभोर हो जाते कि अपनी सुध बुध भी भूल जाते थे। श्रोता भी गदगद कण्ठ होकर

अश्रुधारा प्रवाहित करने लगते। रामायण के साथ वे गीता, भागवत और महाभारत की कथा भी करने लगे। यज्ञ भी कराते परन्तु पौराणिक पद्धति से। इस समय आप वेदान्ती थे और जीव ब्रह्म को एक मानते थे।

आर्य समाज में

पैतृक सम्पत्ति में जैसे संस्कार उन्हें मिले तदनुसार ही वे प्रचार करते थे। परन्तु उनके पाण्डित्य और योग्यता के कारण सम्प्रदाय वाले उन्हें अपनी ओर खींचते थे। जैनियों ने उन्हें जैन बनना चाहा, थियासोफिकल सोसायटी के लोगों ने उन्हें अपने रंग में रंगना चाहा परन्तु वे अस्वीकार ही करते रहे।

आर्य समाज के विद्वान् उन्हें आर्य समाज में लाना चाहते थे। इस आकर्षण को वे अस्वीकार न कर सके। आर्य विद्वानों के सम्पर्क से उन्होंने भक्ति और वेदान्त के मार्ग को तिलांजलि देकर महर्षि दयानन्द के ज्ञान और कर्म मार्ग पर अग्रसर हुए।

अपने प्रचारकाल में ब्रह्मचारी जी तिलहर जिला शाहजहांपुर भी पहुंचे और एक सनातनी भक्त के यहां ठहरे। प्रसिद्ध आर्य समाजी और 'पुराणतत्व', प्रकाश के लेखक श्री चिम्मन लाल जी वैश्य ब्रह्मचारी जी के आने की सूचना पाकर उनसे मिलने गये। वार्तालाप के पश्चात् उनके हृदय में एक इच्छा जागृत हुई कि यदि ऐसा विद्वान् आर्य समाज को प्राप्त हो जाये तो कितना अच्छा हो। उन्होंने ब्रह्मचारी जी से अपने घर चलकर रहने का आग्रह करने लगे। कुछ समय पश्चात् उनकी मन:कामना पूर्ण हुई। ब्रह्मचारी जी श्री चिम्मन लाल वैश्य के यहां पधारे। उनकी सेवा और प्रेमपाश में बंधकर वे लगभग ६ मास तक वहां रहे और जाते हुए आर्य समाज की सेवा आरम्भ करने का वचन दे गये।

स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी से परिचय:—

स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी मथुरा से देहली आ रहे थे। ब्रह्म० नित्यानन्द जी को गाजियाबाद से दिल्ली जाना था। ब्र० नित्या

नन्द जी उसी डब्बे में और उनके ही साथ बैठे। दिल्ली पहुँच कर दोनों एक ही भक्त के यहां ठहरे। कई दिन तक शास्त्रीय चर्चा चलती रही और अन्त में एक दूसरे को अपने अनुकूल जानकर एक दूसरे से ऐसे आबद्ध हुए कि मृत्यु के अतिरिक्त कोई उन्हें वियुक्त न कर सका।

अब स्वामी जी महाराज आर्य समाज का कार्य और भी तीव्र गति से करने लगे। उन्होंने लगभग २५ वर्ष आर्य समाज की सेवा की। इस समय में उन्होंने अनेक बार देश का भ्रमण किया। स्थान-स्थान पर व्याख्यान दिये शास्त्रार्थ किये और आर्य समाजों की स्थापना की।

विशेष गुण

महापुरुषों में कुछ अलौकिक गुण हुआ करते हैं। स्वामी जी भी इस प्रकार के अनेक गुणों से विभूषित थे। यहां उनके कुछ गुणों पर प्रकाश डाला जाता है।

अगाध पाण्डित्य

ब्रह्मचारी जी की विद्वत्ता अगाध थी और पाण्डित्य महान् था। उनके ओजस्वी पाण्डित्यपूर्ण और व्याख्यानों को सुन कर कट्टर से कट्टर विरोधी भी उनके परम प्रशंसक बन जाते थे। हैदराबाद में उनके लगभग ३५ विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान हुए। उन में एक व्याख्यान के सभापति मद्रास के पौराणिक श्रीकृष्ण आयंगर थे। व्याख्यान सुनकर वे इतने प्रभावित हुए कि अपने सभापति भाषण में उन्होंने कहा—

"मैं सुनता था कि हजारों में एक पण्डित होता है परन्तु ब्रह्मचारी जी तो लाखों में एक हैं।"

जब बम्बई में स्वामी जी के अनेक विद्वत्तापूर्ण भाषण हुए तो बम्बई के सुप्रसिद्ध गुजराती दैनिक 'मुंबई समाचार' ने ५ अगस्त १८९४ के अंक में "स्वामी नित्यानन्द के व्याख्यान" शीर्षक में लिखा—

"वर्त्तमान समय में बम्बई नगरी धर्म चर्चा से गूंज रही है। उत्तरी भारत से पधारे ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी के भाषणों से क्या

हिन्दू क्या मुसलमान, क्या पारसी सभी आश्चर्य चकित हो रहे हैं। ब्रह्मचारी जी के भाषणों को सुनने के लिए जनता के झुण्ड के झुण्ड आया करते हैं। जिस स्थान पर व्याख्यान होने की सूचना होती है वहां समय से पूर्व ही जन समूह एकत्रित हो जाता हैं। ठीक समय पर आने वाले श्रोताओं के लिये स्थान कठिनाई से ही मिल पाता है।" इत्यादि।

बम्बई के प्रसिद्ध विनोदी 'हिन्दी पञ्च' ने एक बार ब्रह्मचारी जी के सम्बन्ध में बड़े मनोरंजक ढंग से लिखा—

"हमारे हिन्दु भाइयों के धर्म बाजार में एक दो मास से बहुत तेजी आ गई है। मुख्य मुकाबला मैसर्स हंस स्वरूप और नित्यानन्द जी की कम्पनी का हो रहा है। बाजार की प्रकृति देख कर कहना पड़ता है कि बाजार का रुख मैसर्स नित्यानन्द जी की कम्पनी की ओर ज्यादा है। उनकी कम्पनी के शेयर मंहगे हो रहे हैं। यदि कुछ समय तक ऐसा ही रहा तो यह कम्पनी अपने विरोधियों पर विजय पा लेगी।"

'हिन्दी पञ्च' ने एक बार स्वामी जी का एक कार्टून भी दिया जिसमें उनके चार हाथ बनाये गये। एक हाथ में वेद, दूसरे में मनुस्मृति, तीसरे में तर्कशास्त्र आदि ग्रन्थ दिये गये। मुख मण्डल के चारों ओर ज्योति की किरणें निकल रही थी और नीचे लिखा था—

बम्बई के आर्यों की पूजा मूर्ति. स्वामी नित्यानन्द।

न्याय मूर्ति रानाडे स्वामी जी को 'दि गिफ्टिड प्रीचर' The Gifted Preacher कहा करते थे। जब ब्रह्मचारी जी दक्षिण गये तो उन्होंने अपने अनेक मित्रों को उनके लिये परिचय पत्र दिये थे।

जब महाराज के मैसूर और मद्रास में अनके विद्वतापूर्ण व्याख्यान हुए तो अनेक विद्वान् उनके पाण्डित्य से प्रभावित हुए और समाचार पत्रों ने भी उन की गौरव गाथा का गान किया। मद्रास के सुप्रसिद्ध पत्रक ने उनके सम्बन्ध में लिखा—

ब्रह्मचारी नित्यानन्द आजकल मैसूर में हैं और वे हिन्दू धर्मग्रन्थों के श्रेष्ठ विद्वान् हैं। वेद वेदांग और स्मृतियां उन्हें पूर्णतया विदित हैं। दर्शन, पुराण और इतिहास का भी उन्हें असाधारण ज्ञान है।... ...वे गत दो सप्ताह से धार्मिक और सामाजिक विषयों पर व्याख्यान दे रहे हैं।......ब्रह्मचारी जी की भाषण शक्ति असाधारण है और उनके ज्ञानकी सीमा अत्यन्त व्यापक है।"

ब्रह्मचारी जी ने जब मैसूर के महाराज को भी प्रभावित कर दिया तो उनकी कीर्ति चन्द्रिका में चार चांद लग गये। तब 'इण्डिन सोशल रिफार्मर' ने उन के सम्बन्ध में लिखा—

"ससार में सन्यासी तो बहुत होते हैं। परन्तु सच्चे संन्यासी कम ही होते हैं। ऐसे ही सच्चे संन्यासियों में एक नित्यानन्द जो हैं जो अन्य अनेक स्वामियों को कई नवीन बातें सिखा सकते हैं।"

उपर्युक्त वर्णन से यह भली भांति विदित होता है कि स्वामी जी असाधारण विद्वान् थे। परन्तु विद्वान् होते हुए भी उनमें अभिमान का लेश भी न था। वे सौम्यता और नम्रता जी साक्षात् मूर्ति थे।

विनोद प्रियता

स्वामी नित्यानन्द बड़े ही हंसमुख और विनोदी भी थे अत: उनका नित्यानन्द नाम ठीक ही था। उनकी विनोद प्रियता की दो घटनायें यहां अंकित जी जातीं हैं।

गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव था। स्वामी जी बिना बुलाये ही पहुँच गये। उनका व्याख्यान हुआ तो उन्होंने सरस्वती की अपूर्व-धारा बहाई। आर्य जनता बहुत सन्तुष्ट हुई। आचार्य नरदेव जी ने उनसे पूछा, जब आपको निमन्त्रण नहीं दिया था तो आप कांगड़ी क्यों गये?" स्वामी जी ने हंस कर उत्तर दिया, 'शास्त्री जी! अपने ईर्ष्यालु जनों को पराजित करने का यही सुन्दर उपाय है कि जब वह बुलाएं तब नहीं जाना चाहिए और जब न बुलाएं तब स्वयं पहुँच जाना चाहिये।"

दूसरी घटना बम्बई की है। स्वामी जी जब बम्बई जाते थे तो

सनातनी भक्त भी उन्हें भोजनार्थ निमन्त्रित किया करते थे। भजनो समाप्ति पर भक्त लोग १००) रुपया भेंट करते। कुछ समय तक तो आर्य समाजी चुप रहे परन्तु जब उन से रहा न गया तो एक दिन उन्होंने स्वामी जी से कहा "यह आप क्या करते हैं? भोजन की तो कोई बात नहीं परन्तु दक्षिणा लेना उचित नहीं। स्वामी जी ने हंस कर कहा, इसमें क्या हर्ज है?" सिद्धान्त तो आर्य समाज के लेने चाहिये। परन्तु श्रद्धा (दक्षिणा) सनातनियों की लेनी चाहिये।"

कामिनी और काँचन का त्याग

स्वामी जी का रहन सहन बहुत शान का था परन्तु लोभ उन्हें छू तक भी नहीं गया था। कामिनी और कांचन के प्रलोभन से वे सदा दूर रहते थे। उनके सामने अनेक बार ऐसे प्रलोभन आये परन्तु उन्होंने उन्हें ठुकरा दिया।

स्वामी जी करौली में विराजमान थे। एक सुन्दरी ब्राह्मण स्त्री जिस का पति घर बार छोड़ कहीं चला गया स्वामी जी के सुन्दर एवं ब्रह्मचर्य के तेज से देदीप्यमान मुखमण्डल को देख कर उन पर मुग्ध हो गई और यह प्रसिद्ध कर दिया कि ये मेरे ही पतिदेव हैं जो मुझे छोड़ कर साधु हो गये थे। अन्य लोगों ने भी उस युवती का समर्थन किया और स्वामी जी महाराज से उसे अपने पास रखने का आग्रह करने लगे परन्तु उस ब्रह्मचारी ने उन सब को डांट दिया और वहां से प्रस्थान कर दिया।

शाहपुरा, इन्दौर और बड़ौदा के नरेशों ने उन्हें सहस्रों रुपये मासिक देने का वचन दिया और कहा कि आप हमारे राज्य में रह कर ही प्रचार करें। ब्र० नित्यानन्द जी ने "साधु सर्वत्र विचरता है" कह कर उन प्रलोभनों को ठुकरा दिया।

अहमदाबाद के सेशन जज श्री लल्लू सांवल दास ने अपने एक लाख रुपये के विशाल बाग को भेंट रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना की परन्तु उस सच्चे संन्यासी ने "साधुओं को बाग से क्या लाभ" यह कहकर इस बाग को भी अस्वीकार कर दिया।

महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर उनको विद्वत्ता और प्रतिभासे प्रभावित होकर अपनी प्रसिद्ध संस्था "शान्ति निकेतन" उन्हें अर्पण करना चाहते थे; परन्तु उस त्यागी ने उसे लेना भी स्वीकार नहीं किया।

शास्त्रार्थ महारथी

स्वामी जी शास्त्रार्थ समरांगन के महान् विजेता थे। उनका शास्त्रार्थ कौशल अद्भुत था। उन्होंने अपने जीवन काल में सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और सभी में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी अपने प्रतिपक्षी के प्रश्नों का उत्तर ऐसी योग्यता और विद्वत्ता से देते थे कि उसे दुबारा बोलने का साहस ही न होता था। सन् १९१३ में आर्य समाज खुर्जा के वार्षिकोत्सव पर उन्हें भो निमन्त्रित किया गया। हाथी पर बैठाकर उनका भव्य जलूस निकाला गया। शंका समाधान के समय श्री मुरारी लाल जी उत्तर दे रहे थे। एक उदासी सन्त भी वहां पधारे। उन्होंने संस्कृत भाषा में कुछ प्रश्न किये। जब श्री मुरारी लाल जी उत्तर देने लगे तो स्वामी जी स्वयं खड़े हो गये और उन्होंने धारावाहिक संस्कृत में उत्तर देना प्रारम्भ कर दिया। वह उदासी सन्त इतना प्रभावित हुआ कि तुरन्त सभा से उठकर चला गया।

वैसे तो स्वामी जी के सभी शास्त्रार्थ बड़े महत्वपूर्ण थे परन्तु बून्दी का शास्त्रार्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह शास्त्रार्थ लगातार दस दिन तक होता रहा। इस शास्त्रार्थं में पांच बार लेखों का विनिमय हुआ। प्रत्येक बार पण्डित लोग अप्रासंगिक उत्तर देते रहे। अन्त में जब ब्रह्मचारी जी के धैर्य के समक्ष उनकी दाल न गली तो वे लोग अत्यन्त ओछे हथियारों पर उतर आये और गालीगलौच पूर्ण एक पत्र लिख कर अपना पीछा छुड़वाया। बून्दी के महाराज ने भी पक्षपात के कारण उन्हें बून्दी राज्य से बाहर निकलवा दिया। परन्तु स्वामी विश्वेश्वरानन्द और स्वामी नित्यानन्द जी के पांडित्य की धाक लोगों के हृदय में बैठ गई। बून्दी नरेश और पौराणिक पण्डितों की निन्दा होने लगी। समाचार पत्रों में बून्दी महाराज के विरुद्ध लेख लिखे गये जिन में उनकी तीव्र आलोचना की गई।

इन अनेक गुणों के अतिरिक्त स्वामी जी पूर्ण योगी भी थे। योग में उनको रुचि बाल्यकाल से ही थी और शायद यह रुचि सुन्दर दास के कवित्तों से जागृत हुई थी।

स्वा ी जी ने कई ग्रन्थों की रचना भी की जिन में 'पुरुषार्थ प्रका'श सर्वाधिक प्रसिद्ध है। पं० ठाकुर दत्त धवन के शब्दों में "सत्यार्थ प्रकाश" के दूसरे दर्जे पर पुरुषार्थ प्रकाश है।"

वैदिक कोष

ब्रह्मचारी नित्यानन्द का एक प्रमुख कार्य वैदिक कोष की योजना बनाना है। स्वामी विश्वेश्वरानन्द के साथ आर्य समाज का प्रचार करते हुए उन्होंने अनुभव किया कि चारों वेदों का एक ऐसा कोष निर्माण किया जाये जिसमें वैदिक व्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द का सरल संस्कृत में अर्थ और उसकी व्याकरण सम्मत उत्पत्ति दी जाये। साथ ही विभिन्न धर्मावलम्बी और विदेशी विद्वानों के अर्थ भी दिये जायें। इसके पूर्व इन सब शब्दों को एकत्रित करके चारों वेदों की अलग अलग पदानुक्रमणियां भी छापी जायें।

कार्य विशाल और कठिन तथा श्रम साध्य था तथा पर्याप्त धन की आवश्यकता थी। स्वामी जी ने एक ओर तो नरेशों से मिलकर और पत्र व्यवहार द्वारा धन संग्रह आरम्भ किया तो दूसरी ओर वैदिक पदों की अनुक्रमणिकाएं बनाने का कार्य भी आरम्भ कर दिया। सन् १९१० के अंत तक पदअनुक्रमणिकाएं प्रकाशित हो गई। इनकी कुल पृष्ठ संख्या १००० के लगभग थी और आये पदों की संख्या लगभग ३०,०००। इस प्रकाशन के लिए बड़ौदा नरेश ने १७,५०० रुपये की सहायता दी। चारों ओर प्रकाशन का बहुत स्वागत हुआ। भारतीय पत्रों की तो बात ही क्या न्यूयार्क के नेशन साप्ताहिक ने भी इस प्रकाशन की भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

परलोक गमन

बहुत अधिक परिश्रम करने के कारण स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़गया और उन्हें श्वास रोग ने घेर लिया २२ अक्टूबर १९१३ को

वे शिमला से अपनी अन्तिम यात्रा पर चले। ग्वालियर, भरतपुर, झांसी आगरा इलाहाबाद और बनारस जयपुर और अजमेर होते हुए वे २३ दिसम्बर को भडौंच पहुंच गये। भड़ौंच में ही स्वामी जी को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। भडौंच से वे दो दिन के लिये आनन्द चले गये। ३० दिसम्बर को आनन्द में ही उन्हें ज्वर हो गया और श्वास कष्ट होने लगा फिर भी बम्बई के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये वे ३१ दिसम्बर को बम्बई पहुंच गये। परन्तु सभा स्थल पर न जाकर विला पारले के संन्यास आश्रम में ठहर गये। ३० दिसम्बर से ही उनकी निद्रा सर्वथा उड़ गई और श्वास का वेग प्रबल होता गया। ८ जनवरी १९१४ रात्रि के दो बजे उन्होंने अपनी इह लीला विसर्जन कर दी। दूसरे दिन लगभग ७ बजे वैदिक विधि अनुसार स्वामी जी का दाह संस्कार किया गया। अन्य सामग्री के अतिरिक्त ६ मन चन्दन और चार मन घी भी डाला गया।

स्वामी जी के निधन का समाचार जब सम्पूर्ण देश में फैला तो शोक की एक लहर दौड़ गई। अनेक व्यक्ति शोक सागर में डूब गये। इन्दौर के डाक्टर गोविन्द राव चास्कर ने यह समाचार पाते ही अन्न जल छोड़ दिया और तीन दिन पश्चात् वे भी मानों स्वामी जी से मिलने के लिये परलोक सिधार गये।

स्वामी जी की अंतिम इच्छा यह थी कि वैदिक कोष को पूर्ण किया जाये और एक साधु आश्रम स्थापित किया जाये। स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी वृद्ध होते हुए भी इस कार्य में लग रहे। शिमला में उन्होंने नित्यानन्द आश्रम की स्थापना की और फिर विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की स्थापना की गई जो उनके द्वारा उठाये हुए कार्य को सुचारू रूप से कर रहा है।

—:०:—

॥ ओ३म् ॥

वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला

जीवात्मा



यह विषय बहुत गहन और सूक्ष्म है। योगी पुरुषों के लिये भी अगम्य है। तथापि इस विषय में ज्ञानी पुरुषों का यथार्थ कथन क्या है, इसे आज मैं संक्षेप में बतलाना चाहता हूं। कई लोगों का कथन है कि—"शरीर ही आत्मा है। शरीर और आत्मा भिन्न नहीं।" इन्द्रिय-आत्मवादियों का यह कहना है कि—"शरीर की अपेक्षा इन्द्रिय उत्तम हैं और इसलिये इन्द्रियां ही आत्मा हैं। इन्द्रियों से आत्मा कोई भिन्न नहीं।" मन-आत्मवादियों का यह कथन है कि—"आम्रफल का स्वाद जिह्वा को जान पड़ता है, सुगन्धि नासिका को, रंग नेत्रों को, कोमलता त्वक्-इन्द्रिय को। परन्तु यह फल 'मिष्ट' सुगन्धित, पीला, कोमल, इत्यादि गुणों से युक्त है' यह बात एक ही समय में जानने वाला इन्द्रियों से कोई भिन्न है और वह मन है।" इस युक्ति से मन-आत्मवादी लोग इन्द्रियों को आत्मा न मानकर मन को ही आत्मा मानते हैं। कुछ अन्य लोगों का कथन है, कि—"मन आत्मा नहीं है। क्योंकि मन का काम तो संकल्प-विकल्प करना है। परन्तु निश्चयात्मक ज्ञान जिससे प्राप्त होता है वह बुद्धि है। इसलिये 'मन आत्मा नहीं है। किन्तु बुद्धि ही आत्मा है' ऐसा वे मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि "प्राण ही आत्मा है। इसके अस्तित्व से प्राणी जीते हैं और यदि यह न हो तो प्राणी जीवित न रहें, इसलिये प्राण ही आत्मा है।" परन्तु यह कथन भी कितनों ही के मत से योग्य नहीं क्योंकि निद्रा में प्राण रहता है, पर उसमें ज्ञान-शक्ति नहीं रहती। प्राण तो एक प्रकार का जड़ वायु है, इसलिये यह

आत्मा नहीं हो सकता। कितने ही लोग शून्य को आत्मा मानते हैं। कुछ एक कहते हैं—"शून्य को यदि आत्मा मानते हो तो, हम कहते हैं कि 'जो शून्य जानता है वही आत्मा है।' क्योंकि पहले तो शून्य को जान ही नहीं सकते।" इस प्रकार प्रस्तुत विषय में बहुत से मतभेद हैं। वैदिक लोग आत्मा का लक्षण इस प्रकार बताते हैं—"इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्" न्याय द० १।१।१० इति। अर्थात् जो सुख की इच्छा करता है, यही नहीं किन्तु उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है, तथा दुःख की इच्छा न करते हुए उससे द्वेष करता है और जिससे सारे पदार्थों का ज्ञान होता है वही आत्मा है। अब हमें यह देखना है कि—'वास्तव में यह मत कहां तक सच है।' हमारे बड़े २ ऋषियों ने इस विषय पर बहुत ही सूक्ष्म विचार किया है। वे महात्मा आजकल के पुरुषों की तरह न थे। वे चारों पुरुषार्थों को अच्छी तरह से जानते थे। इस क्षणिक संसार में अहर्निश निमग्न न रहते हुए अरण्य में रहकर आत्मा और ईश्वर विषय पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते थे। उन्होंने इस विषय पर अत्यन्त श्रम करके महान् आविष्कार किया है।

इस लिये 'उनका क्या कथन है' यह आप लोगों को ध्यान पूर्वक सुनना चाहिये। नास्तिक लोग प्रकृतिवादी हैं। उन्हें चैतन्य का ज्ञान नहीं। वे कहते हैं—"चैतन्य प्रकृति का एक विकार है।" 'चैतन्य स्वतन्त्र नहीं' यह उनका मत है। अब हमें यह सिद्ध करना है कि—"जीव शरीर से भिन्न है।" जब तक शरीर में चैतन्यशक्ति है, तब तक ज्ञान शक्ति है। शरीर से उसका वियोग होते ही शरीर मृतप्राय हो जाता है। ज्ञानशक्ति शरीर का एक अंश अथवा विकार है। अतएव जब तक शरीर है, तब तक ज्ञान शक्ति होनी ही चाहिये। पर ऐसा नहीं होता। जैसे, जहां दीपक होता है वहां प्रकाश भी होता है। दीपक से प्रकाश अलग नहीं हो सकता। इससे यह स्पष्ट है कि—'ज्ञानशक्ति शरीर से भिन्न है।' यह कैसे कहा जा सकता है कि शरीर और आत्मा एक ही है। जिसके योग से ज्ञानोद्भव होता है

उसी को जीवात्मा कहते हैं। हाथ, पैर, नाक, कान, इत्यादि अवयवों में ज्ञानशक्ति का अभाव है। इसी तरह शरीर स्वयं जीवात्मा नहीं। शरीर के नष्ट होते ही ज्ञानशक्ति का लोप हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि शरीर और ज्ञानशक्ति यह दोनों भिन्न २ हैं। अब हमें यह विचारना चाहिये कि—"आत्मा शरीर का भाग है या उससे भिन्न है।"

यदि यह मान लिया जाय कि 'जीव पंचतत्वों का बना हुआ है' तो पहले यह देखना चाहिये कि पंचतत्वों में ज्ञानशक्ति है या नहीं। पृथ्वी, वायु, तेज, जल और आकाश इन पांचतत्वों में से किसी में भी जब चैतन्यशक्ति नहीं यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हुई बात है, तब यह कहना, कि इन पांचतत्वों में ज्ञानशक्ति है, बिलकुल युक्ति शून्य है। अच्छा, एक मत यह भी पाया जाता है कि जैसे आक्सिजन (प्राण वायु) और हाइड्रोजन वायु के मेल से जल उत्पन्न होता है, उसी तरह इन पाँच तत्वों के संयोग से जीव शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। अच्छा, अब हमें यह जांच करनी चाहिये कि यह सिद्धान्त कहां तक सत्य है। जीवशक्ति प्रारम्भ के ही पांच तत्वों में अंशतः है या मिश्रण के अनन्तर उत्पन्न होती है। जब प्रारम्भ से ही अंशतः पांच तत्वों में यह शक्ति होगी, तभी मिश्रण के बाद भी उत्पन्न हो सकती है। यह स्वयं सिद्ध है। चैतन्य पृथिवी में है, अथवा वह पांचतत्वों के मिश्रण होने के बाद उत्पन्न होता है इन दो बातों में से एक बात माननी ही चाहिये। जीवात्मा को यदि पांच तत्वों का एक रूपान्तर माना जाय तो पांच तत्वों में पहले ही से उसका अंशतः होना मानना पड़ेगा। अच्छा, अब इस विषय में विचार करना चाहिये कि जीव शरीर का एक अंश है, या जीव और शरीर का एक अंश है, या जीव और शरीर दोनों पृथक् पृथक् हैं। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सूर्य को नहीं छोड़ सकता और गुण गुणी को नहीं छोड़ सकता उसी प्रकार, यदि जीव को शरीर का एक गुण माना जाय, तो वह उसे छोड़ नहीं सकता। मतलब यह कि शरीर के मृत होने पर उसे शरीर

से भिन्न न होना चाहिए। परन्तु शरीर के मृत होते ही जीवात्मा उससे विलग हो जाता है। इससे यह कदापि नहीं कह सकते कि वह शरीर का एक अंश है। कैसे शोक की बात है कि आजकल हम लोग अपने कर्त्तव्य कर्म की ओर ध्यान न दे अज्ञानी की तरह सिर्फ बकते ही रहते हैं; इसी से अधिकांश में हमारी विचार शक्ति का ह्रास हो गया है। अज्ञानता के कारण न हम यह जान सकते और न समझ ही सकते, कि हमारी स्थिति पहले कैसी थी और अब कैसी है। संस्कृत में जिसको योग कहते हैं और जिस का ज्ञान हमारे ऋषि-मुनियों के अनुग्रह से दूसरों को होता था वह अब यूरोप, अमेरिकादि देशों में "मेस्मरेजम" के नाम से प्रगट हुआ है। महाभारत, शान्तिपर्व में एक कथा है कि "राजा जनक के दरबार में सुलभा नाम की एक बाला योगविद्या में पारंगत होकर आई थी।"

तात्पर्य यह है कि आर्य्यावर्तमें छोटी-छोटी बालिकाओंको भी योगविद्याका सम्पूर्ण ज्ञान था। योगविद्याके प्रभावसे आधुनिक विद्वानों के मतानुसार "मेस्मरीजम" के द्वारा अपने शारीर की भीतरी रचना जानी जा सकती है और उससे अनेक रोग भी अच्छे होते हैं। इन्द्रियों के द्वारा जो कार्य नहीं किया जाता है वह एक स्वतन्त्र शक्ति होती है और वही आत्मा है। जिसे हम आत्मा मानते हैं, आधुनिक डाक्टर उसे "ब्रेन" कहते हैं। वे ब्रेन को भी अन्य इन्द्रियों की तरह शरीर का एक अंश बतलाते हैं। तब तो, आधुनिक डाक्टरों के कथनानुसार जो मनुष्य स्थूल शरीरका हो उसकी आत्मा भी विशाल होनी चाहिए, पर शरीरकी विशालता के अनुसार आत्मा विशाल नहीं होता। कई लोगों का कथन है कि "मेस्मरीजम" के योग से विविध समाचारों का जानना और इसी तरह पूर्ण योगाभ्यास के साधनसे पुनर्जन्मादि स्थितियों का जानना असम्भव है। हमारे देश में सौ दो सौ वर्ष पहले यदि कोई कहता कि यूरोप में बैल, घोड़ा इत्यादि से चलाई जाने वाली गाड़ी सिर्फ अग्नि और जल के योग से चलती है। तो लोग उसे मूर्ख और पागल कहते हैं। रेल निकलने से पूर्व विमान की बात कोई सच

न मानता। यही हाल पुनर्जन्म और आत्मा के अस्तित्वका भी समझिये।

हम लोग अपनी प्रगाढ़ अज्ञानता के कारण इस बात को बिलकुल सच नहीं मानते और हमारे बड़े बड़े विद्वान् जो अपने ग्रन्थोंमें ऐसी बड़ी बड़ी बातें लिख गये हैं उन्हें हम सिर्फ मनोरंजक उपन्यास या अरेबियन नाइट्की कहानियां मानते हैं! पर वास्तव में पूर्वकाल का यह हाल न था। जैसे सूर्य की किरणें, जहां तक जगह मिलती है, वहां तक फैलती जाती है, उसी प्रकार योगियों की शक्ति योग के प्रभाव के अनुसार बढ़ती ही जाती है। आत्मा चर्मचक्षुसे नहीं देखा जा सकता। वह सिर्फ ज्ञानचक्षु से ही देखा जा सकता है। शरीर और आत्मा दोनों भिन्न भिन्न है। जैसे तप्त लोह की अग्नि जब उससे अगल हो जाती है तब दिखाई नहीं पड़ती, पर वास्तव में वह लोहे से अलग ही हैं; उसी प्रकार शरीर और आत्मा भी भिन्न २ हैं। अब यह देखना चाहिए कि इन्द्रियों की तरह आत्मा क्या एक भिन्न वस्तु है? प्रत्येक अवयव में आत्मा नहों होता। वस्तुत: सब अवयवों में आत्मा की शक्ति व्यापक रूप से रहती है। फूल लाल, सुगन्धित और कोमल है, यह देखने और जांचने का केवल आत्मा का है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इन्द्रियां आत्मा नहीं। यही हाल मनका है। जैसे अक्षि (आंख) की शक्ति देखना है उसी प्रकार मनकी शक्ति जानना है। मन कुछ साक्षात् जीव नहीं है। सारांश यही है कि—'जीव इन्द्रियोंसे सर्वथा भिन्न है।, ऋग्वेद में कहा है कि तीन पदार्थोंके अन्दर सारी सृष्टि का समावेश है। **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते"** (ऋ०-१।१६४।२०) इत्यादि। वे तीन पदार्थ प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा ये हैं। जीव शरीर से भिन्न है। शरीर का नाश होता है, पर जीव का नाश नहीं होता। वह अनादि अविनाशी है। **"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः"** (गीता० २। २३) अर्थात् "अग्नि, पानी या शस्त्र उसका नाश नहीं कर सकते।"

इससे सिद्ध होता है कि—'जीव अविनाशी है।' चींटी से हाथी तक सब में जीव है। "अहम् अस्मि" "I am" "मैं हूँ" यह प्रत्येक मनुष्य कहता है। अपने २ जीवकी रक्षा के लिए प्रत्येक प्राणी प्रयत्न करता है। इससे भी प्रकट होता है कि जीवका अस्तित्व सर्वमान्य है।

"Evolution Theory"

(विकासवाद) और "सांख्यशास्त्र" में सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में वर्णन किया गया है। इस विषय में चार्ल्स, डार्विन हर्बर्ट स्पेनसर इत्यादि अनेक तत्ववेत्ताओं ने विचार किया है। सब पदार्थों का विचार करने के बाद सांख्यशास्त्र में आत्मा का विषय अत्युत्तम रीति से समझाया गया है। जैसे अन्न से दूध, दूध से दही, दही से माखन माखन से घी और घी से वाष्प आदि अनेक रूपान्तर होते हैं, उसी प्रकार शरीर की भी दशा है। अन्न से वीर्य, वीर्य से गर्भ, गर्भ से शरीर की उत्पत्ति, बाद को बाल्यवस्था, शैशवावस्था, किशोरावस्था वृद्धावस्था और अन्त में मृत्यु। इस प्रकार शरीर के अनेक रूपान्तर होते हैं। शरीर की सारी अवस्थाओं में आत्मा रहता है। उसके अनस्तित्व का अभाव है। हम सब पदार्थों को जानते हैं और जानना यह एक चैतन्यशक्ति का ही गुण है, वह चैतन्यशक्ति आत्मा के बिना हो नहीं सकती। सूर्य है तभी प्रकाश है, रात को सूर्य के न रहने से उसका प्रकाश भी नहीं रहता; जब प्रकाश दिखे तब जानना चाहिए कि सूर्य भी है। उसी प्रकार हम जानते हैं कि—हम में चैतन्यशक्ति है।' इससे स्पष्ट मालूम होता है कि आत्मा है। चैतन्यशक्ति है इसी-लिए शरीर के सारे व्यापार होते हैं। वह यदि न हो तो उसी क्षण सारा मामला बिगड़ जाय। आधुनिक डाक्टर तो अभी इसी शंका में पड़े हैं कि—'जीव है या नहीं।' परन्तु हमारे प्राचीन विद्वान् वैद्य इस विषय में बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों में जहां अष्ट धातुओं का वर्णन है वहां जीव का भी वर्णन है। आजकल के विद्वद्वर्य लोगों की बुद्धि साकार पदार्थों को ही जान सकती है निराकार पदार्थों के जानने में वह कुण्ठित हो जाती है।

जिस पदार्थ का ज्ञान इन्द्रियों से नहीं हो सकता, उसके लिए इन्द्रियों का ही उपयोग करना कितनी भारी भूल है। हमारे पेट में यदि दर्द हो तो उसे हमारी आंखें कैसे देख सकती हैं ? और कान कैसे सुन सकते हैं ? उसे जानने के लिये तो बुद्धि की ही आवश्यकता है। इसी प्रकार इन्द्रियों से परे वस्तु ज्ञान द्वारा ही जान लेनी चाहिये। वैशेषिक शास्त्र में कहा है—"**आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्म-प्रत्यक्षम्।**" (९।१।११) अर्थात् मन और आत्मा का विशेष सम्बन्ध होने से आत्मा का यथार्थ ज्ञान होता है। इनका विशेष सम्बन्ध सम्बन्ध यदि न हो तो वह ज्ञान नहीं होता। आत्मा और मन का सम्बन्ध सदैव का है। किन्तु इस सम्बन्ध से आत्म-बोध नहीं होता, यही कणाद ऋषिका भी कथन है। प्राचीन पुरुष आजकल के जेंटल-मैनों की तरह होटलों में बैठ बर्फ, सोडा, शरबतादि वस्तुओं का भक्षण कर व्यर्थ गप्पें मारने वाले न थे। किन्तु उदरपोषणके निमित्त धान्य का एक एक कण खा निर्जन बन में रह कर जन समूह के लिए सर्वोपयोगी परमात्मवाद के विचार में अहर्निश मग्न रह कालक्रमण करते थे। अपनी सारी आयु उन्होंने इसी भांति के सूक्ष्म विचारों में हमारे कल्याण के लिए व्यतीत की। अतएव उन महात्माओं के विचार अत्यन्त मूल्यवान् और महत्वपूर्ण है। हर्बर्ट स्पेन्सर के समान ग्रन्थकारों के एक दो ग्रन्थ पढ़कर आजकल के नवयुवक विद्वान् अपने प्राचीन ऋषियों की निन्दा करने लगते हैं यह कितने शोक की बात है ! हमारे ऋषियों ने जो जो मार्ग और जो जो शिक्षा बतलाई है, उस पर अवलम्बित न रहते हुए जब हम उनके मार्ग के देखे बिना यह शंका निकालते हैं कि—"जीवात्मा है या नहीं" तब आप ही बताइये इसमें किसका दोष है ? हमारा वा हमारे गुरुजनों का ? हमारे हाथ में एक लकड़ी है और हम वह लकड़ी एक अन्धे पुरुष को बतलाते हैं, तथा उनके विषय में हम उससे बहुत कुछ वर्णन करते हैं, तथापि उसके ध्यान में वह बात नहीं आती तो क्या इससे हमको यह मान लेना चाहिए कि "वास्तव में लकड़ी नहीं है ?' अन्धे की दृष्टि नहीं

इसमें हमारा क्या दोष ? इसी प्रकार यदि हमें आत्मा का ज्ञान न हो तो इससे यह नहीं कह सकते कि आत्मा का अस्तित्व ही नहीं।' न समझना अपना ही दोष है। 'हम आत्म सम्बन्धी विषय का यथायोग्य मिचार नहीं करते, पर एक दम स्वच्छन्दता से निश्चय कर वैठते हैं।' यह उत्कृष्ट मार्ग नहीं हैं। आजकल के डाक्टरों का मत है कि—"चैतन्यशक्ति ब्रेन (मस्तिष्क) में रहती है। क्रियाजनक और ज्ञान जनक तन्तु ब्रेन से निकल कर शरीर के सब भागों में फैले हुए हैं और उन्हीं से सारा व्यवहार चलता है।" इन भाइयों से हमें इतना ही पूछना है कि जब सारे शरीर में ज्ञानतन्तु फैले हुए हैं तो कल्पना करो कि हमारे हाथ में महाव्यथाकारक एक व्रण हुआ है, उसकी वेदना जागृतावस्था में तो होती है परन्तु जब हम गाढ़ निन्द्रावश होते हैं तब हमें यह नहीं जान पड़ता इसका क्या कारण है ? ज्ञानतन्तु उस समय भी तो अपनी अपनी जगह में रहते हैं, परन्तु निन्द्रा में दुःख का ज्ञान क्यों नहीं होता ? इससे हमें स्पष्ट मालूम होता है कि "ज्ञानतन्तु और जीवात्मा दोनों भिन्न भिन्न है।" डाक्टरों का यह कथन कि मस्तिष्क में ज्ञान शक्ति है, भ्रमण से युक्त है। इनके कथनानुसार शरीर का प्रत्येक परमाणु ४० दिनों में अपना स्थान छोड़ कर दूसरी जगह चला जाता है, उनकी यह क्रिया बराबर अव्याहत होती रहती है। हाथ के परमाणु कितने ही वर्ष में पैर के तलवे में या शरीर के किसी अन्य मार्ग में चले जाते हैं। इस प्रकार सात वर्षों में वे सारे परमाणु निकल जाते और उनके स्थान में दूसरे नवीन परमाणु उत्पन्न होते हैं। यदि एक पुरुप एक वर्ष अथवा छः मास तक प्रतिदिन दो सेर पेड़ा खाय तो इस क्रम के अनुसार कितने मन पेड़े उसके पेट में होने चाहिए और उसका पेट कितना फूल जाना चाहिये ? परन्तु ऐसा नहीं होता। जिस प्रकार गंगा का जल आगे बढ़ता है और उसकी जगह नवीन जल आता है उसी प्रकार हमारे शरीर की भी दशा है। अर्थात् प्रत्येक वस्तु का रूपान्तर होकर अन्त में वह नाश को प्राप्त हा जाती है। इस प्रकार सात वर्षों

में यदि शरीर के सब परमाणु निकल कर दूसरे नवीन उत्पन्न होते हैं तो यह देखना चाहिये कि हमारे उपर्युक्त दृष्टान्त के साथ इस बात का मेल कहां तक मिलता है ? एक ब्राह्मण का छः वर्ष का लड़का वेदाध्ययन के लिये काशी गया था। वह वहाँ रह कर साठ वर्ष की अवस्था तक अध्ययन करने के बाद अपने घर को लौटा। बालपन में जो वस्तुएं उसके देखने में आई थीं उन सबका स्मरण उसे अब भी है, इतने दीर्घ समय में भी उसकी ज्ञानशक्ति और स्मरणशक्ति का नाश नहीं हुआ। ऐसी दशा में डाक्टरों के उपर्युक्त मत की वास्तविकता कितनी है सो सहज ही मालूम हो सकती हैं। एक बार दो बार इस प्रकार क्रमशः दस बार जब ज्ञानतन्तु नवीन उत्पन्न होते हैं तब स्मरणशक्ति न रहनी चाहिए पर वास्तव में यह ठीक नहीं है। यदि परमाणु ही ज्ञानजनक तन्तु हो तो ज्ञान का नाश हो जाना चाहिए, पर ऐसा नहीं होता। ज्ञानतन्तु और आत्मा भिन्न २ हैं, इससे स्पष्ट हो जाता है कि परमाणु शरीर से निकलते रहते हैं पर आत्मा उस समय बना रहता है, और केवल उसी से ज्ञान होता है। इसी लिये ज्ञान की प्राप्ति बड़े परिश्रम से होती है। वैदिक लोग मानते हैं कि—'जीव की उत्पत्ति और नाश नहीं होता।' क्रिश्चियन और मुसलमान जीव को आदि-अन्तयुक्त मानते हैं। उनका कथन सृष्टिनियम के सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि 'जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश होना ही चाहिए' यह नियम है। जीव को जो अविनाशी मानते हैं वे पुनर्जन्म को भी मानते हैं, किन्तु कई लोग पुनर्जन्म स्वीकार नहीं करते! यह विषय बहुत ही सूक्ष्म है। संस्कृत में इस विषय पर जो ग्रन्थ हैं उन्हें आजकल के हमारे बी० ए० एम० ए० समझ नहीं सकते। ईश्वर, जीवात्मा, पुनर्जन्म इत्यादि न मानने वालों से हमारा प्रश्न है, कि तुम्हारी शंका का मूल हेतु क्या है ? प्रश्न करने में चार उद्देश्य रहते हैं। पहला जानकारी प्राप्त करने के लिये, दूसरा अनुमति लेने के लिये, तीसरा जानकारी कराने के लिये, और चौथा सिर्फ कुत्सित रीति से दोष निकालने के लिये। इन चार प्रकारों में से तुम्हारा प्रश्न किस प्रकार का है ? सच्चे धर्म जिज्ञासु-

पन से पूछने वाले विरले ही हैं। परन्तु निन्दा का उद्देश्य रखकर पूछने वाले असंख्य हैं। इस जगत् में सृष्टि के नियमानुसार प्रत्येक वस्तु का रूपान्तर होता है। उसी प्रकार जीव का रूपान्तर क्यों होना चाहिए ? सूक्ष्म रीति और शान्तचित्त से विचार करने वाले को तत्काल मालूम हो जाता है कि पुनर्जन्म है या नहीं ? जैसे शरीर में रज, मांस उत्पत्ति, वृद्धि, नाश, इत्यादि भिन्न २ रूपान्तर होते हैं वैसे ही जीव की भी दशा में रूपान्तर होना चाहिये। यही पुनर्जन्म है। एक जन्म छोड़ दूसरा धारण करना जीव का रूपान्तर कहलाता है। पुनर्जन्म न मानने वाले पुरुषों का यह आक्षेप है कि—"यदि पुनर्जन्म का अस्तित्व है तो हमें पुनर्जन्म का स्मरण क्यों नहीं होता ? चूंकि हमें पुनर्जन्म की याद नहीं रहती, इसलिये यह मानना चाहिये कि पुनर्जन्म नहीं।" उनका यह कथन ऊपर से तो सच्चा भासता है, परन्तु इस शंका का समाधान क्या है सो देखिये। जीव जिस जगह से आता है, उस जगह का ज्ञान उसे नहीं रहता। मुसलमान लोग यह मानते हैं कि—"जीव को ईश्वर स्वर्ग से इस संसार में भेजता है तब वह माता के गर्भ में प्रवेश करता है" परन्तु 'हम कहां से आये' इसका ज्ञान उसे नहीं रहता। जीव का ज्ञान यदि जीव को नहीं होता, तो क्या हमें यह मानना उचित है कि—'जीव है ही नहीं ?' जब हम छः महीने के बालक थे, तब हमारी मां कौन, बाप कौन, और बहिन कौन यह न जानते थे। इससे क्या यह मानना योग्य है कि—हमारे मां, बाप, भाई, बहिन इत्यादि कोई नहीं थे ?' यही हाल पुनर्जन्म का है। जैसे बीज में वृक्ष मौजूद है, परन्तु यदि पानी देकर वह जमीन में बोया न जाय और उसकी योग्य रक्षा न की जाय तो उसका वृक्ष नहीं बन सकता है। यही हाल जीव का भी समझना चाहिये। जीव की दो शक्तियां हैं, सामान्यशक्ति और विशेषशक्ति। जागृतावस्था में सामान्यशक्ति और विशेषशक्ति यथा स्थिति होती है। स्वप्नावस्था में विशेषशक्ति सूक्ष्म स्वरूप में रहती है और सुषुप्ति में उसका लय होता है इससे उस अवस्था में कुछ

जानने की शक्ति नहीं रहती। जहां तक जीव की शक्ति ठीक ठीक अपनी जगह पर रहती है वहां तक वह सब जान सकता है। पर जब वह ठीक जगह पर नहीं होती तब वह कुछ भी नहीं जान सकता। बाल्यावस्था में जो जो बातें होती हैं उनका हमें स्मरण नहीं रहता। इससे यह कैसे मान सकते हैं कि—'उस समय कुछ था ही नहीं, अथवा जीव ही न था ?' वास्तव में बात यह है कि उस समय ज्ञानशक्ति अत्यन्त ही सूक्ष्मावस्था में होती है। पतञ्जलि ऋषि ने कहा है कि—'योग से पुनर्जन्म जाना जा सकता है।'*

महाभारत में इस विषय के अनेक दृष्टान्त हैं। योगशक्ति खूब बढ़ानी चाहिए। पर हमारे समान मध्यम स्थिति के लोगों से यह नहीं हो सकता। कितने ही लोग एक अंगरेजी ग्रन्थ पढ़ उनके मन-माने झूठे सच्चे विचार लेकर विद्वत्ता का आडम्बर दिखलाकर यह कहा करते हैं कि—'हमारे शास्त्रों में कुछ नहीं। वे बिलकुल झूठे हैं।' पर हम समझते हैं।' कि ऐसे लोगों को अपने शास्त्रों का कुछ पता ही नहीं है। आज कल के शिक्षित लोगों के मुख से जो यह वचन निकला करते हैं कि—'हमारे पूर्वज मूर्ख थे। हमारा धर्म कोरा आडम्बरमात्र है; अत एव मिथ्या है। हममें पहले कुछ भी पुरुषार्थ नहीं था। ऐसे वचन कहना और उनको सुनना क्या थोड़े दुर्भाग्य की बात है ? जब कि एक आधुनिक प्रामाणिक अंग्रेजी ग्रन्थकार हमारे कला-कौशल्य के विषय में आदर प्रदर्शित करता है और अपने ग्रन्थ में स्पष्ट रीति से स्वीकार करता है कि—इसी देश से सारी विद्या हमारे यहां आई है। तब हमारे भाई (अल्पज्ञानी) निन्दक ग्रन्थों को

---

*महायोगेश्वर भगवान् कृष्ण ने भी गीता में अर्जुन से कहा है—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥ अ० ४।५॥

योगदर्शन का सूत्र है—

संस्कार साक्षात्करणात्पूर्वज्ञातिज्ञानम्॥ ३।१८॥

पढ़कर अपनी निन्दा कर रहे हैं यह कैसी शोकजनक बात है ? पहले आर्य्यावर्त सब कलाओं का मुख्य स्थल था। इस विषय में प्रसिद्ध राजर्षि कवि भर्तृहरि वैराग्यशतक में कहते हैं:—

* पुरा विद्वत्ताऽऽसीदुपशमवतां क्लेशहतये ।
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्धै च विषयिणाम् ।
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखात् ।
अहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽथः प्रविशति ॥ २७ ॥

एक क्रिश्चियन मिशनरी विशप ने अपने व्याख्यान में कहा था कि "यद्यपि हमारे धर्मशास्त्र (बाईबल) में पुनर्जन्म के विषय में कुछ नहीं कहा गया, तथापि यह बात नहीं कि पुनर्जन्म माननेवाले हमसे कुछ प्रत्युत्तर न कर सकें। 'ईश्वर न्यायी है, यह जगत् के सारे शास्त्रों का सिद्धान्त है। उससे कालत्रय में भी अन्याय नहीं हो सकता। तब फिर कोई अन्धा, कोई लंगड़ा, कोई दरिद्री, इस प्रकार जो अनेक लोग दुःखी देख पड़ते हैं, इसका क्या कारण है ? परमात्मा के न्यायी राज्य में क्या वास्तव में ऐसा हो सकता है ? नहीं। सच तो यह है कि अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार न्यायरीति से सबको दण्ड मिलना ही चाहिये और यदि वह इस जन्म के अनुसार न हो तो अन्य-जन्म कृत कर्म का परिणाम होना चाहिए। अच्छा, पुनर्जन्म न मानने वालों से हमारा यह प्रश्न है कि जो पुण्य करता है वह तो स्वर्ग को जाता है और जो पाप करता है वह नरक को प्राप्त होता है। पर जो न पुण्य करता है न पाप करता है, समता का आचरण

---

* अहा ! कैसे दुःख की बात है जो विद्या पहले पंडितों को चित्त का क्लेश दूर करने का कारण थी, वही विद्या काल की गति से विषयी लोगों के विषयसुख सिद्ध होने का कारण हुई और यह देखकर महान् कष्ट होता है कि आजकल राजाओं के शास्त्रविमुख होने से वह रही सही विद्या भी प्रति दिन अधोगति को ही प्राप्त होती जा रही है।

करता है उसका मरने के बाद क्या होता है। स्वर्ग प्राप्ति होने के योग्य पुण्याचरण न करने से जब स्वर्ग नहीं मिलता, और नरक प्राप्त होने के योग्य पापाचरण न करने से जब नरक भी नहीं मिलता तब उसकी क्या गति होती है ? इस प्रश्न का उत्तर कोई नहीं दे सकता। अतएव पुनर्जन्म लेना पड़ता है। इससे भी स्पष्ट है कि—'पुनर्जन्म अवश्य है' अन्य अनेक युक्तियों से सिद्ध हो सकता है पर समय बहुत हो गया है, इससे विशेष विवेचन करना मैं ठीक नहीं समझता। ॥ इति शम् ॥

मनुष्य जन्म की सफलता

मनुष्य की प्रकृति अनेक प्रकार की है। परन्तु इस जगत् में सारी मनुष्य जाति का दो विभागों में समावेश हो सकता है। एक विद्वान् और दूसरे अविद्वान्। अविद्वान् लोग रेलवे के इंजिन की गति की तरह चलने वाले होते हैं। उनमें सारासार विचार का अभाव होता है। इंजिन केवल चलना ही जानता है; "अमुक स्थल में कौन-सा निश्चित् स्थान है ? यह इलाहाबाद या देहली है, इसका उसे लेशमात्र मी भान नहीं होता। बस, अविचारी लोगों का आचरण भी ऐसा ही होता है। वे गतानुगतिकता के अनुसार केवल खानपान में निमग्न रह कर अपनी सारी आयु व्यर्थ गंवाते हैं। हमारा कर्तव्य क्या है। हमारा जन्म सार्थक कैसे हो ? इत्यादि विचारों की ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता। यह बात मनुष्यमात्र को अवश्य ही जाननीं चाहिए कि हमारा कर्तव्य क्या है ?" अथर्ववेद १२।२।२५ में कहा है:—

"यथा अहान्यनुपूर्वम् भवन्ति यथार्तव ऋतुभिर्यान्ति साकम्।"

अर्थात् "जिस प्रकार रात, दिन तथा ऋतु एक के बाद दूसरी आती है, उसी प्रकार हे मनुष्य ! तू अपना कर्त्तव्य कर। तुम अपना

कर्त्तव्य रात दिन नियमित समय पर करो। जिस प्रकार पाठशाला का विद्वान् शिक्षक एशियाखंड का भूगोल पढ़ाते समय पहले अपने शिष्यों को उसका सामान्य ज्ञान कराता है, फिर उसके बाद प्रत्येक देशविशेष का ज्ञान कराता है और इन बातों का ज्ञान कराने के लिए जिस प्रकार नकशे की सहायता लेता है, क्योंकि केवल पुस्तक के द्वारा भूगोल का ज्ञान उत्तम नहीं हो सकता, इसी प्रकार कृपालु ईश्वर ने हम सब को वेद रूपी पुस्तक और सृष्टिरूपी नकशे के आधार से यह बतलाया है कि—"मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है।" वही आज आप सब भाइयों के समक्ष मैं यथा शक्ति निवेदन करता हूं। जिस पृथिवी के ऊपर हम सब निवास करते हैं, वह अपना कर्तव्य करने में कभी नहीं चूकती। प्रतिदिन चौबीस घंटे में वह अपने आसपास एक बार घूम आती है और वर्ष में एक बार सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। आप् तेज, वायु, आकाश, सूर्यचक्र इत्यादि भी अपने अपने कार्य में नहीं चूकते। अच्छा, यदि इन जड़ वस्तुओं की ओर ध्यान न देकर चेतन प्राणियों को देखें तो वे भी अपना अपना कर्तव्य योग्य रीति से करते रहते हैं। इसी प्रकार हमारी इन्द्रियां भी अपने अपने कर्तव्य यथा नियम पालती रहती है। इस विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड में ऐसी एक दृष्टिपथ से नहीं गुजरतो, जो अपना कर्तव्य न जानती हो।

तब फिर सब से श्रेष्ठ और ज्ञानी जो मनुष्य प्राणी है, वही यदि अपना कर्तव्य भूल कर व्यर्थ भूभाररूप होकर रहे तो कितने दुःख और सन्ताप की बात है? कर्त्तव्य का विषय बहुत ही व्यापक है। हमारा कर्त्तव्य अनेक भांति का है। परन्तु आत्मरक्षा, सन्तान रक्षा, समाज संस्था, मनोरंजन और धर्म तथा उपासना इन छः भागों में उसका समावेश होता है। इसी का हम अब संक्षिप्त रीति से विवेचन करते हैं, क्यों कि आप सब बहुश्रुत और विद्वान् हैं। चरक मेंकहा है—

'प्राणैषणा धनैषणा परलोकैषणेति। आसांतु खल्वेषणानां प्राणैषणा तावत् पूर्वतरमापद्यते। कस्मात्? प्राणपरित्यागे हि सर्वपरित्यागः।'

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को प्राण की, धन की और परलोक की यह तीन प्रकार की इच्छा होती है। प्राण की रक्षा करना मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चारों की प्राप्ति होना मनुष्य जन्म की सफलता है, और यह बात अवश्य ही प्राण पर अवलम्बित है। यदि शरीर की आरोग्यता अच्छी न हो तो इनमें से किसी की भी प्राप्ति न होगी। इसीलिये आत्मरक्षण मनुष्य का पहला कर्त्तव्य कर्म है। प्रत्येक मनुष्य को शरीर की आरोग्यता रखने के लिये तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

परन्तु इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करके तदनुसार अपनी देह की रक्षा करने वाले आज कल हमारे देश में कितने लोग हैं? गर्मी के दिनों में जब प्यास अधिक लगती है, तब उसे मिटाने के लिये बिना सोचे समझे गटगट बहुत सा पानी पीकर अपना शरीर बिगाड़ने वाले हम लोगों में कुछ थोड़े नहीं हैं। नियम विरुद्ध चलकर अपना आरोग्य बिगाड़ने वालों के अनेक उदाहरण मिलेंगे। इस देश में ऐसे लोग कुछ कम नहीं हैं जो मजदूरी करके गरीबी और अति दुःख से अपना तथा अपने कुटुम्ब का निर्वाह नहीं करते, दिन भर मजदूरी करके दो तीन आने पैदा करने वाला अपने बालबच्चों का और अपना पोषण जब अच्छी तरह नहीं कर सकता तब वह दुःखी जीव—चाहे उसमें अन्न की गठरी तीन कोस ले जाने की शक्ति न हो तो भी पेट भरने के लिये दो मन अनाज की गठरी छै कोस लेजाकर अपना स्वास्थ्य बिगाड़ता है और जल्दी मौत के पंजे में फंस जाता है।

अब मध्यम श्रेणी के लोगों की स्थिति देखिये। उनको प्रातःकाल आठ बजे नौकरी पर उपस्थित होना पड़ता है। बारह-बारह घण्टा काम करना पड़ता है, तब कहीं निर्वाह भर के लिये दस पन्द्रह रुपये वेतन मिलता है। काम करते करते शिथिल पड़ जाता है पर वह विचारा करे क्या? खाने के लिये तो प्रतिदिन प्रातः सांय चाहिये ही।

ऐसी मध्यम स्थिति के लोगों की दुर्दशा है। अब बड़े-बड़े विद्वानों की दशा निराली है। बी० ए०, एम० ए०, एल० एल० बी० इत्यादि

पदवियां प्राप्त करने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है तब कहीं उन्हें कोई अच्छी नौकरी या रोजगार मिलता है। पर शरीर से विचारे क्षीण हो जाते हैं, इसलिये उनसे विशेष परिश्रम नहीं हो सकता। सिर्फ दिखाने भर के लिये यह लोग गाड़ी घोड़े में बैठे हुए फिरा करते हैं। यही उनका आनन्द है। उनको देखकर स्कूल के विद्यार्थी यह लालसा करते हैं कि हम भी बी० ए० एम० ए० हो जांय तो हमको भी ऐसे ही आनन्द करने को मिले इस कारण अत्यन्त परिश्रम करके शरीर के आरोग्य का ध्यान न करते हुए विद्याभ्यास करते हैं। इसके सिवा स्कूल और कालेजों में फिलासफी (दर्शनशास्त्र) इत्यादि गहन विषय सीखने के लिये माथापच्ची भी करनी पड़ती है। फिर घर के कष्ट अलग ही हैं। स्वयं तो दुर्बल है और घर में सोलह सत्रह वर्ष की स्त्री भी है, गृहस्थी का काम सम्हालना ही चाहिये, यह भी एक बड़ा दुःख समझिये। बड़ी कठिनाई और परिश्रम से कहीं एक आध परीक्षा पास कर ली, अब नौकरी की चिन्ता लगी। उसमें भी अवसर पर कामयाबी नहीं हुई। अब इसमें शरीर का क्या दोष है? मन खराब रहता है, आंखें अन्दर घुसी जाती हैं, और अन्न भी अच्छी तरह नहीं पचता! अन्त में वह बेचारा शीघ्र ही यमलोक की यात्रा करता है!! मनुष्य गणना से यह बात जानी गई है, कि—"अन्य लोगों की अपेक्षा बेचारा गरीब ग्रेजुएट बहुत जल्दी मर जाता है" (वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली का यही कुफल है) क्या ईश्वर की उसके ऊपर कोई ऐसी निर्दयता थोड़ी ही है कि वह जल्दी मर जावे। उस परम दयालु ने तो कम से कम सौ वर्ष तक की मनुष्य की आयु, नियत की है। ग्रेजुएटों के जल्दी मर जाने का कारण यही है कि—'शिक्षा इत्यादि का बोझ उनके ऊपर बहुत भारी आ पड़ता है।' ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं, जो अपने शरीर का स्वास्थ्य ठीक रखने के विषय में कुछ विचार करते हों। प्रत्येक मनुष्य को वैद्यक सम्बन्धी थोड़ा बहुत ज्ञान होना ही चाहिये। आश्विन में करेला खाने से पित्त की वृद्धि होती है और कार्तिक में दही खाने से

ज्वरादिक प्राप्त होते हैं। इसलिये इस बात का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना चाहिये कि अमुक ऋतु में अमुक वस्तु सेवन करने से प्रकृति ठीक रहती है। विशेष कर आधिव्याधि का मूलकारण हमारा प्रमाद ही है। व्याधिग्रस्त होने के बाद औषधोपाय करने से कितनी हानि होती है? ऐसे रुग्ण व्यक्ति को पुत्रकलत्र भी जो अत्यन्त प्रिय होते हैं नहीं सुहाते। कार्य की हानि, उपयोगी समय का नाश, औषधोपचार सम्बन्धी खर्च, घर के लोगों की चिन्तितावस्था, डाक्टरों का कष्ट इत्यादि अनेकानेक आफतें आ पड़ती हैं और फिर एक बार जो प्रकृति बिगड़ जाती है तो फिर वह सुधर कर पूर्ववत् कभी नहीं होती। इसी लिये महर्षि पतञ्जलि ने योग शास्त्र में लिखा है कि—

"हेयं दुःख मनागतम्" यो० २। १६॥

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को यह प्रयत्न करना चाहिये कि भविष्य में दुःख न आने पावे। सबसे पहला कर्त्तव्य शरीर की रक्षा करना है। व्याधि होने के पहिले ही सब भाईयों को सावधान रहना चाहिये। देखिये, यह कितनी लज्जा की बात है कि हमारे भाइयों को इस बात का जरा भी ज्ञान नहीं रहता कि हमें सदैव किस प्रकार के अन्न का सेवन करना चाहिये। मनुष्य की साधारण आयु मर्यादा १०० वर्ष की है। "जीवेम शरदः शतम्" य० ३६॥ २४

ऐसा वेद में वर्णन है— ":त्र्यायुषं जमदग्ने" यजुर्वेद॥

इत्यादि इसके प्रमाण हैं। योगाभ्यास के बल से ३०० वर्ष पर्यन्त मनुष्य जी सकता है। परन्तु आजकल १००० में सिर्फ १० मनुष्य कदाचित् ऐसे निकलेंगे जो १०० वर्ष तक जीवित रह सकते हों। इसका मुख्य कारण यही है कि हम ब्रह्मचर्य, आचरण, खान पान इत्यादि बातों पर बिलकुल ध्यान नहीं देते। मनुष्य प्राणी यदि यह अच्छी तरह जानता हो कि—"आत्मरक्षण क्या है और शास्त्र के अनुसार वह कैसे किया जाता है।" इस बात का ज्ञान रखने वाला हो तो सौ वर्ष तक सहज ही जीवित रह सकता है। हमारा दूसरा कर्त्तव्य जीविका है। शरीर पोषण के लिये मनुष्य को कोई न कोई उद्यम

करना ही चाहिये। उद्योग के विना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। सारा संसार उद्योग करता है, परन्तु बहुत थोड़े मनुष्य इस बात पर ध्यान रखते हैं कि—"उद्योग ठीक है या नहीं। अनेक लोग प्रारब्ध के ही भरोसे बैठने वाले होते हैं। हिन्दू और क्रिश्चियन या मुसलमान आदि विजातीय लोगों के प्रारब्ध के मानने में मतभेद हैं। हम अपने पूर्वजन्मोपार्जित कर्म को प्रारब्ध समझते हैं और यह लोग खुदा (ईश्वर) की इच्छा को प्रारब्ध मानते हैं। हम समझते हैं कि हमको जिस फल की प्राप्ति होती है वह सब पूर्वजन्म के कर्मानुसार है। परन्तु यह जानना चाहिये कि बिना उद्योग केवल भाग्य के भरोसे ही, फल प्राप्ति नहीं होती। महाभारत में लिखा है—

यथा क्षेत्रं मृदुभूतं अद्भिराप्लावितं तथा ।
जनयत्यंकुरं कर्म नृणां तद्वत्पुनर्भवम् ॥
शां० प० अ० ३२१ श्लो० ३२० ॥

पूर्वजन्म का कर्म केवल बीज रूप है। वह बीज यदि उद्यम रूपी भूमि में बोया नहीं गया, किन्तु सन्दूक में रखकर डाल दिया गया तो उससे फल कैसे मिल सकता है? यदि वह योग्य स्थल में बोया गया है, खाद डाली गई है, जल सिंचन किया गया है, तो फल की आशा रखी जा सकती है। प्रकाश और दृष्टि इन दोनों के संयोग से वस्तु दृष्टिगोचर हो सकती है। केवल प्रकाश या केवल दृष्टि से इच्छित फल की प्राप्ति नहीं होती इसी प्रकार उद्योग और प्रारब्ध के संयोग से फल प्राप्ति समझनी चाहिये। केवल प्रारब्ध से कुछ फल नहीं मिलता। उद्योग को विशेष प्राधान्य दिया गया है। महाभारत में व्यासमुनि ने बतलाया है:—

यश्च दिष्टपरो लोके यश्चापि हठवादिकः ।
उभावपि शठावेतौ कर्मबुद्धिः प्रशस्यते ॥
यो हि दिष्टमुपासीनो निर्विचेष्टः सुखं शयी ।
अवसीदेत्स दुर्बुद्धिरामो घट इवोदके ॥
म० भा० व० प० अ० ३२ ॥

जो पुरुष प्रारब्ध पर सारा विश्वास रखकर उद्योग नहीं करता और चुपचाप बैठा रहता है वह नष्ट हो जाता है। संसार में प्रारब्ध का अवलम्बन करके रहने वाला और "यद्भवि तद्भवति" "जो होना होगा सो होगा" कहने वाला मूर्ख है। उद्योग के बिना सब व्यर्थ है। उद्योग में बुद्धि लगाने वाला पुरुष श्रेष्ठ बनता है। इस समय हम सब जिस भवन में एकत्र हुए हैं वह कुछ आप ही आप प्रारब्ध से निर्माण नहीं हुआ। जब अनेक पुरुषों ने अनेक प्रकार का उद्योग किया है, तब यह मन्दिर अस्तित्व में आया है। 'उद्योग से क्या कार्य होता है और प्रारब्ध में विश्वास रखने से मनुष्य की क्या दशा होती है' यह बात इंगलैंड और हमारे भारतवर्ष की दशा देखने से सहज ही मालूम हो सकती है। शुक्रनीति में कहा है—"धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्। अशक्तः पौरुषं कर्तुं क्लीबा दैवमुपासते" वे महात्मा, कि जिनका चरित वन्दनीय हैं उद्योग को ही श्रेष्ठ मानते हैं। पुरुषार्थहीन क्लीब या नपुंसक ही उद्योग को नहीं मानता, और प्रारब्ध का शोर मचाता तथा उद्योग नहीं करता है। कवि कहता है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी—
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः॥

उद्योग से लक्ष्मी की प्राप्ति और सब कार्यों की सिद्धि होती है। इसलिये सब भाइयों को सर्वथा सतत उद्योग करना चाहिये। उद्योग करने के बाद जो "यदि न सिद्धति कोत्र दोष' ऐसा कवि का वचन है इसका अर्थ बड़े २ पदवीधर विद्वान् कहते हैं कि—"यत्न करने के बाद यदि कार्य सिद्धि न हो तो इसमें हमारा क्या दोष? हम से जितना बना उतना हमने किया; अब हमारा कोई दोष नहीं रहा।" परन्तु यह अर्थ करने में ये लोग बड़ी भूल करते हैं। कवि का कहने का अभिप्राय वास्तव में ऐसा नहीं है। "कोऽत्रः दोषः" अर्थात् 'यत्ने-को दोषः?" अर्थात् यत्न करने में कौन सी त्रुटि रह गई?

हमारे लिये क्या सर्वशक्तिमान् ईश्वर को उद्योग करना चाहिये ? हमको जो रोटी की सदैव आवश्यकता रहती है वह क्या ईश्वर कर दिया करे ? ईश्वर का काम पृथ्वी आदि सृष्टि की सब वस्तुओं की रचना करना है और वह उसने किया है और करता भी है। जीव का काम जीव को करना चाहिये। 'ईश्वर देगा तो हम खायेंगे' ऐसा कहना भ्रम से भरा है। उद्योग अनेक प्रकार का है, जिसको जो अच्छा लगे उसे वह करना चाहिये। सारांश, शरीर की रक्षा के लिये उद्योग सबको करना ही चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करके कम से कम २५ वर्ष तक विद्याध्ययन करना चाहिये। इसके बाद धनोपार्जन करके फिर विवाह करना चाहिये। प्राचीन काल में यही प्रणाली थी। आजकल बहुत से "जैंटिलमैन" धर्म छोड़ द्रव्योपार्जन करने लगते हैं। धर्म त्याग करने पर अधिक धन मिलता हो तो भी उसका त्याग नहीं करना चाहिये। जिस धर्म से परिणाम में दुःख प्राप्त हो वह सच्चा धर्म नहीं। ऐसे धर्म का त्याग ही करना चाहिये। जिस धर्म से अपना हित है उसी को धर्म कहना चाहिये। और वास्तव में धर्म है भी वही। इस समय सात सात, आठ आठ वर्ष के बच्चों का, जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि विवाह क्या है और उसका क्या उपयोग है, विवाह कर देते हैं यह कितनी खेदजनक बात है ? राजपूताने में एक अच्छे गृहस्थ के घर उत्सव था। उसे मैंने स्वयं देखा। वर पांच छः वर्ष की अवस्था का था। विवाह का मुहूर्त्त रात का था। वर कन्या ऊंघने लगे। तब उनको एक तरफ सुला दिया। फेरे फिरने के पहले की सारी विधि पुरोहित महाराज ने समाप्त कर ली थी अब फेरा तो वर राजा को ही फिरना चाहिये। इसलिये उसका बाप उसके पास जाकर उठाने लगा। कहा-भाई ! उठ अब फेरा खाने का समय आ गया; परन्तु वर बेचारे को यह ज्ञान कहां था कि फेरा कैसे खाया जाता है ? उसके मन में यह आया कि मेरा पिता "फेरा"* अर्थात् 'पेरा' खाने

* फेरा उस तरफ पेड़ा को भी कहते हैं।

के लिये उठाता है। वह बोला "पिता जी! मुझे ऊंघाई आती है। मुझे पेड़ा नहीं खाना है। मुझे भूख नहीं लगी है।" वर राजा का एक चार-पांच वर्ष का छोटा भाई, जो पास ही पड़ा था, बोल उठा "पिता जी चलो, मैं चलता हूं; मुझे भूख लगी है।" तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि विवाह के समान उत्तम विधियां भी यथा योग्य पालन नहीं की जाती। "मैं आपके बिना कुछ भी नहीं करूंगी। आपको छोड़ अन्य की ओर चित्ताकर्षण नहीं होने दूंगी" इत्यादि प्रतिज्ञा वधू को विवाह के समय करनी पड़ती हैं। उसी प्रकार 'तेरी सम्मति के बिना 'धर्मे च अर्थे च कामे च नाति चरामि'। इत्यादि प्रतिज्ञा वर को करनी पड़ती है। अथर्थवेद के १४ वें कांड में विवाह सम्बन्धी विषय का सम्पूर्ण वर्णन किया गया है। आज कल तो, जो प्रतिज्ञा करनी होती है, उसे सिर्फ पुरोहित मात्र बक जाता है। वर और वधू को उसके विषय में लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता। क्योंकि उनका विवाह बाल्य-अवस्था में हो जाता है। इसलिये प्रौढ़ होने पर दोनों, यदि विवाह को अस्वीकारें और पुरोहित से पूछें कि—हमने ऐसे प्रतिज्ञा कब की थी और यदि की हो तो हमें बतलाओ"। तब पुरोहित महाराज उसको क्या उत्तर देंगे? प्राचीन काल में विवाह विधि वधूवर के इच्छानुसार होता था। सुभद्रा का अर्जुन के साथ विवाह कैसे हुआ सो सभी जानते हैं। उस समय बलभद्र जी जब अर्जुन पर क्रोधित हुए तब कृष्ण भगवान् ने उसका समाधान किया और बोले—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् कोऽनुमन्यते।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि॥

उनका विवाह दोनों की सम्मति से हुआ। कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसे पशु की तरह बेचना उचित नहीं। इसी प्रकार कुन्ती, सीता द्रौपदी इत्यादि अनेक राजकन्यायें पौढ़ावस्था में स्वयंवर विधि से विवाहित हुई थी। कुछ लोग कहते हैं कि इस विधि से सिर्फ राज-कन्याओं का विवाह होता था पर यह ठीक नहीं। ब्राह्मण लोगों की

कन्याओं (जैसे शुक्राचार्य की कन्या देवयानी) का स्वयंवर विधि से विवाह हुआ था। इच्छानुसार वर न मिलने पर ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके आमरण अविवाहित रही हुई अनेक स्त्रियों के दृष्टान्त मौजूद हैं। गार्गी, सुलभा, इत्यादि के चरित्रों पर से आप लोग जान लीजिये। इस विषय की जानकारी के लिये हमारा बनाया हुआ "पुरुषार्थ प्रकाश" नामक पुस्तक देखने से सारी बातें मालूम हो जायेंगी। स्त्रियों की तरह अनेक पुरुष जैसे भीष्म पितामह, हनुमान, परशुराम इत्यादि ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके अपने पराक्रम का महत्व संसार में प्रसिद्ध कर गये हैं। कहां इन लोगों का पुरुषार्थ और कहां आजकल के हमारे बाबू लोगों का पुरुषार्थ ? कुन्ती के पुत्रों का पराक्रम कैसा था और आजकल के छोटे २ लड़के—लड़कियों के विवाह से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों का पुरुषार्थ कैसा है ? छोटी सी डब्बी में एक बड़ा हाथी कैसे रह सकता है ? छोटी उम्र में विवाह करने से अनेक हानियां होती हैं।

पूर्णवय प्राप्त होने के वाद विवाह करना चाहिये। ऐसा न करने वाला पाप भागी होता है। पूर्णावस्था में विवाह न होने से भावी प्रजा अत्यन्त निर्बल उत्पन्न होती है जिसके मा-बाप स्वयं ही छोटी अवस्था में हों उस बालक की रक्षा कैसे की जा सकती है ? बालक का उनको कैसे ध्यान रह सकता है, और उसे सम्हालने का काम वे कैसे कर सकते हैं ? वे अप्रौढ़ माता-पिता लड़कों को खेलने के लिये भी जाने नहीं देते, क्योंकि कसरत से होने वाले लाभ का उन्हें ज्ञान नहीं रहता। अपने बच्चों के खाने पीने की सम्हाल भी वे जैसी चाहिये वैसी नहीं रख सकते। इस कारण वे अज्ञानी मा बाप के लड़के बाहर से चोरी करके खाना सीखते हैं इससे वे अनेक व्याधियों में फंस जाते हैं। पेट फूल जाता है, हाथ पैर सूखकर लकड़ी से हो जाते हैं। घड़ी भर में सर्दी, घड़ी भर में और कुछ इस प्रकार अनेक व्याधियां लगी रहती हैं, अज्ञानी मां-बाप सिर्फ सन्तान उत्पन्न करना जानते हैं पर उस उम्र में उसका पालन करने की बुद्धि उनमें नहीं होती। शारीरिक विषयों को छोड़कर जब हम विद्या की ओर ध्यान

देते हैं तब वहां भी यही दुर्दशा दिखाई देती है। इसका कारण भी उपर्युक्त ही है। आज कल लोग अपनी गीर्वाण भाषा संस्कृत का पढ़ना छोड़कर अंग्रेजी पढ़ने में लग गये हैं। इतिहास पढ़ाते समय राम-जनक प्रभृति के चरित्र न बताकर औरंगजेब जैसों के जन्म वृत्तान्त पढ़ाये जाते हैं। इनके पढ़ाने से लड़कों के मन पर बुरा असर पड़ता है। 'राज्य-प्राप्ति के लोभ में आकर अपने सगे भाइयों को कैसे मारना' यह युक्ति उपर्युक्त चरित्र पढ़कर लड़के सीख जाते हैं। श्री रामचन्द्र के समान महात्माओं का इतिहास सिखाने से बन्धु-प्रीति, पूज्य बुद्धि, माता-पिता की आज्ञा का पालन; सत्य बोलना, और सत्य पर ही चलना, पति पत्नी प्रेम, राजकीय चातुर्य, प्रजा पालन, एक पत्नीव्रत, इत्यादि अनेक सद्गुण शिष्यगण सीखते और पूज्य बुद्धि बनते हैं। यहीं नहीं, वे स्वयं उसके अनुसार चलना भी सीखते हैं। बड़े २ विद्वान् होते हैं, बी० ए०, एम० ए० इत्यादि पदवियां प्राप्त करते हैं, तथापि आर्य धर्म के विषय में कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं करते। आर्य धर्म क्या है? उसमें क्या तत्व है यह जानने का वे कुछ भी प्रयत्न नहीं करते और जब वे स्वयं नहीं जानते तो अपने को पंडित मानने वाले अपने परिवार को उपर्युक्त बातें कैसे सिखा सकते हैं? मुसलमान लोग अपने बच्चों को प्रारम्भ से ही कुरान शरीफ सिखाते हैं पर हम आर्य लोग अपने बच्चों को वेद का दर्शन मात्र भी नहीं कराते और आप जानते हैं कि क्रिश्चियन लोगों का आज ऐसा 'अभ्युदय' क्यों हो रहा है? इसका कारण उनकी एक मात्र धर्मश्रद्धा ही है। ग्लैडस्टेन के समान महान विद्वान् बिना धर्म शिक्षा के उत्पन्न नहीं हो सकता। तम्बाकू पीने से आयु के पांच वर्ष कम हो जाते हैं इस प्रकार कहने वाला डाक्टर स्वयं एक के बाद दूसरा चुरुट फूंकता रहता है। ऐसे उपदेशकों के उपदेश का प्रभाव उनकी सन्तानों पर कैसा पड़ता है? 'तम्बाकू मत पीयो' यह कहने में तो कुशल है परन्तु स्वयं पीते हैं इसी लिये बाप जहां बाहर गया कि उसके लड़के इस जिज्ञासा से कि 'इसमें क्या है' तम्बाकू का

स्वाद लेने लगते हैं। स्वयं अपना आचरण सुधारे बिना अन्य को उपदेश करना मूर्खता है। बालकों में अनुकरण करने की शक्ति विशेष होती है इसलिये उनके समक्ष नीति विरुद्ध कुछ भी बोलना अथवा करना न चाहिये। कुछ दिन हुए, मुझे एक एम० ए० पास किया हुआ विद्वान् मिला था। उसने एक शंका की कि—"कालेज में प्रोफेसरों ने हमें बतलाया कि भूत पिशाच नहीं हैं और हम भी ऐसा ही समझते हैं' परन्तु रात के समय जब हम अकेले श्मशान के समान एकान्त स्थान में जाते हैं, तब हमको भूत, पिशाच का डर क्यों लगता है ? मैंने उससे पूछा कि—"तुम्हारी बाल्यावस्था में भूत पिशाचों की बातें किसी ने तुम्हारे सामने की थी ?" उसने कहा हां, हमारी माता बालपन में हम से कहा करती थी कि—"रात को बाहर मत जाना वहां भूत प्रेत होंगे वे तुम्हें सतावेंगे" तब मैंने उससे प्रत्युत्तर में कहा कि "तुम्हारी माता ही एक भूत है और उसी ने तुम्हें घेर रखा है। "नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः"—महाभारत। वेद से उत्तम कोई शास्त्र नहीं और माता के समान कोई गुरु नहीं।" जब देश का अभ्युदय विद्या सम्पन्न विदुषी स्त्रियों के ऊपर अवलम्बित है तब स्त्रियों को अवश्य शिक्षा देनी चाहिये। जिस प्रकार लड़कों को विद्याभ्यास कराया जाता है उसी प्रकार लड़कियों को भी कराना चाहिये। उदाहरण लीजिये एक लड़का अपने बाप के साथ उपवन में घूमते हुए पूछने लगा "पिता जी ! यह फूल किसका है ? इस प्रश्न की ओर ध्यान न देकर बाप चलने लगा। जब जिज्ञासु भाव से बालक ने पूछा था तब उसके मन की शङ्का का समाधान पिता को करना ही चाहिये था। बच्चों को मुख्य शिक्षा माता पिता की ही ओर से मिलनी चाहिये। हम चार पाच भाई फौजी मनुष्यों की तरह एक सी चाल से नहीं चल सकते। हमारे पैर एक समान नहीं पड़ सकते क्योंकि वह विद्या हमने सीखी ही नहीं। शिक्षा की जराबदारी माता पिता के ऊपर है। परन्तु पहले उन्हें अपना आचरण सुधारना चाहिये। पीछे बालकों को शिक्षा देनी

चाहिये और उनकी रक्षा करनी चाहिये यह तीसरा कर्त्तव्य है। 'समाज' यह चौथा कर्तव्य है जिसके विषय में हम आज विशेष विवेचन नहीं करते। पांचवां कर्तव्य "मनोरंजन" है। मन को इस प्रकार विश्रान्ति देनी चाहिये कि मनोरंजन करने में धर्म में बाधा न आने पावे। मनोरंजन विविध प्रकार से किया जा सकता है। इसलिये जो मार्ग उपयुक्त और निर्भ्रान्त हो उसी का अवलम्बन करना चाहिये। छठा और अन्तिम कर्तव्य "धर्म और ईश्वरोपासना" है। जब कोई मनुष्य ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानता तो यही कहना चाहिये कि उसमें मनुष्यत्व ही नहीं है। वर्तमान समय में आर्य रीति से ईश्वर का अस्तित्व मानने वाले बहुत कम लोग हैं। आफिस में जोर से बोलते समय भय लगता है कि हमारे साहब कहीं नाराज न हो जांय। परन्तु हमें परमेश्वर का जो साहब से कहीं बड़ा और राजा महाराजाओं का भी महाराजा तथा संसार का स्वामी है बिलकुल भय नहीं होता। उसे प्रसन्न रखने के लिए उसकी आज्ञा के अनुसार चलना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। सर्वशक्तिमान् प्रभु का भय रखकर उसकी भक्ति किये बिना मनुष्य पापाचरण से बच नहीं सकता और पाप मार्ग से परावृत्त हुये बिना यह लोक तथा परलोक सिद्ध नहीं हो सकते। इसीलिये आप सब भाइयों से मेरा नम्र निवेदन है कि आप ईश्वर के परम भक्त बनकर इस लोक तथा परलोक का हित कर लीजिये। यही श्रेयस्कर और अभीष्ट है। इत्याशास्महे।

मानव-ज्ञान-स्रोत

इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार जलके उद्भवको स्रोत या झरना कहते हैं उसी प्रकार मनुष्य के ज्ञान के उद्भव को 'मानवज्ञान-स्रोत' कहते हैं। अब आज आप यह देखें कि मनुष्य के ज्ञान का उद्भव कहां से होता है। यह विषय बड़ा गहन है। आस्तिक लोग यह मानते

हैं कि "परमेश्वर से ज्ञान की उत्पत्ति है" और नास्तिक लोग यह मानते हैं कि "ज्ञानोत्पत्ति स्वाभाविक है (नैसर्गिक है) किसी ने दी नहीं ।'

"ज्ञान नहीं है" ऐसा अनुभव किसी मनुष्य को नहीं हुआ। प्रत्येक मनुष्य यह जानता है कि—"अमुक वस्तु" बड़ी है, अथवा अमुक वस्तु "अन्य कोई पदार्थ है" । इसीसे स्पष्ट मालूम होता है कि 'ज्ञान' है । यह कोई नहीं कह सकता कि 'ज्ञान नहीं है' । जिस प्रकार आस्तिक को ज्ञान का अस्तित्व स्वीकार है उसी प्रकार नास्तिक को भी है । मतभेद केवल इतना ही है कि एक उसको यदि नैसर्गिक बतलाता है तो दूसरा ईश्वरप्रदत्त मानता है । अब यह देखना है कि आस्तिक और नास्तिक के मतभेदों में कौन सच है । उत्तररामचरित्र में कहा है कि मनुष्य में जानने की शक्ति स्वाभाविक होती है, परन्तु निमित्त के बिना ज्ञान नहीं होता । एक विद्वान् गुरु दो विद्यार्थियों को बराबर परिश्रम से पढ़ाता है, पर उनमें से एक पढ़ता है और दूसरे को पढ़ना अच्छा नहीं लगता । इससे स्पष्ट मालूम होता है कि ज्ञान शक्ति दोनों में है, तथापि पढ़ने की शक्ति समान नहीं है । ज्ञान का अस्तित्व दो रीतियों से माना जा सकता है, एक परमेश्वरदत्त और दूसरा नैसर्गिक। ईश्वरदत्त ज्ञान मानने में भी दो पक्ष हैं आर्य लोग यह मानते हैं कि ईश्वर ने वद के द्वारा ज्ञान दिया है और मुसलमान तथा क्रिश्चियन यह मानते हैं कि वह 'कुरान और बाइबिल के द्वारा मिला है।' परमेश्वरदत्त ज्ञान मानने की यह पहली रीति हुई । दूसरी रीतिवालों का कहना है कि परमेश्वर ने पुस्तक द्वारा ज्ञान नहीं दिया है, किन्तु प्रत्येक को थोड़ी बहुत ज्ञान शक्ति दी है । दूसरे पक्ष का कहना है कि परमेश्वर ने ज्ञान नहीं दिया । वह धीरे २ बढ़ता जाता है । नास्तिक पक्षवालों के साथ वादविवाद करने का आज अवसर नहीं है । उनके साथ वाद करते समय पहले यह विवाद करना पड़ेगा कि ईश्वर है या नहीं । यह आज का विषय नहीं है । आज हमें इस विषय में विचार करना है कि जो परमेश्वर को मानते हैं उनका कहना क्या

है ? माता पिता लड़कों को जन्म देने के बाद उनका प्रबन्ध रखने में क्या असावधान रह सकते हैं ? हम सब मनुष्यमात्र जिस परम कृपालु दयाघन की सन्तान है, उसको हमारे हितअनहित के विषय में कितनी चिन्ता होनी चाहिये। जिसने हम सब को उत्पन्न किया है, वह क्या हमारा कुछ भी प्रबन्ध न करते हुए हमको जंगलमें रोते हुए अकेला छोड़ देगा ? क्या उसे अपनी सन्तान की कुछ भी चिन्ता नहीं जैसे मा बाप अपने लड़कों को जंगल में छोड़ने का दुष्कर्म नहीं कर सकते उसी प्रकार परम कृपालु ईश्वर से भी ऐसा कार्य नहीं हो सकता कदापि किसी अवसर में भी नहीं हो सकता। पहले ही से मनुष्य का सारा प्रबन्ध किये बिना वह उसे उत्पन्न नहीं करता। पहले ही से अपनी प्रजा की सारी व्यवस्था कर देने के बाद मनुष्य को उत्पन्न करता है ऐसा ही होना चाहिये। मनुष्य के ऊपर दुःख न आवे इसलिये उसने उसकी उत्पत्ति के साथ ही ज्ञान का भी प्रबन्ध कर रखा है। इसलिये यह बात ईश्वर का अस्तित्व मानने वालों को अवश्य स्वीकार करनी चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि ज्ञान ईश्वर प्रणीत है। अच्छा, अब जो लोग यह कहते हैं कि "ज्ञान शनैः शनैः बढ़ता जाता है, वह किसी का दिया हुआ नहीं।" उनका कहना कहां तक सच है यह देखना चाहिए। इस सृष्टि को उत्पन्न हुए करोड़ों वर्ष हो गये। क्रिश्चियन लोग पृथ्वी की उत्पत्ति पांच हजार वर्ष के अन्दर मानते हैं, परन्तु वे अब समझने लगे हैं कि हमारा यह कथन भ्रमयुक्त है। 'महाभारत के युद्ध को ही पांच हजारसे अधिक वर्ष हो गये' यह बात सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है। इससे स्पष्ट है कि युद्ध के बहुत पहले वह उत्पन्न हुई होगी। इतने विशाल समय की अवधि में 'कोई पुरुष गुरु के बिना ज्ञानी हुआ हो' ऐसे स्वयं सिद्ध ज्ञानी का एक भी दृष्टान्त उपलब्ध नहीं होता। विद्याप्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता होती ही है। गुरु के बिना त्रिकाल में भी विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। जब यह बात है तब सृष्टिके प्रारम्भ में गुरु के बिना विद्या कैसे प्राप्त हुई ! प्राचीन कालमें बड़े २ ज्ञानी और विद्या सम्पन्न लोग हो गये

हैं यह बात मैं अनेक संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर प्रमाण सहित सिद्ध कर सकता हूँ। कोई यह न समझे कि मेरा कहना मेरी निज की कल्पना है। इस विषय के हमारे पास अनेक सबल प्रमाण हैं। इस बात को झूठ करने वाला अवश्य ही झूठी गप्पें मारता है। पर सप्रमाण कुछ नहीं कहता। गुरु के विना ज्ञान नहीं होता यह स्पष्ट है। इससे यह भी निर्विवाद है कि उन प्राचीन ज्ञानियों का भी कोई गुरु होना चाहिये। हमारे प्राचीन ऋषियों का वर्त्ताव ऐसा था, कि जिससे वे अपना सारा जीवन एक-एक ही विषय में लगाकर उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त करते थे। आजकल के लोगों के मन की दशा गिरगिट के रंग की तरह दिन में तीन बार बदला करती है, दस पन्द्रह मिनट तक भी उनका मन स्थिर नहीं रहता। तब फिर बड़े २ गहन विषयों का ज्ञान सम्पादन करके वादविवाद करने की कुशलता हम लोगों में कहाँ से आवेगी? महर्षि पातञ्जलि कृत योग शास्त्र में इस विषय का विवेचन यथातथ्य किया गया है।

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"। (यो० द० १।२६)

इसमें सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी परमात्मा को सब का गुरु माना है। इसके पहले किसी को भी ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई थी। ज्ञान रूपी स्रोत का यह प्रारम्भिक स्थान है। सूर्य का प्रकाश चाहे जैसा तेजस्वी और आंख के लिये असह्य हो, एक जन्मान्ध पुरुष से उस प्रकाश का स्वरूप और अस्तित्व कहिये, उस पर वह बिल्कुल विश्वास नहीं करेगा। बस इसी तरह बिना योग्यता के केवल चर्मचक्षु से इस विषय का ज्ञान नहीं हो सकता। "गुरु बिना ज्ञान नहीं होता यह स्पष्ट है और वह गुरु परमेश्वर ही है" यह आस्तिक लोगों को स्वीकार करना ही चाहिये। वेद ज्ञान का भण्डार है। "परमेश्वर ने वेद द्वारा जन समूह में विद्या को फैलाया है" ऐसा एक पक्ष का कहना है। अन्य पक्ष कहता है कि "शनैः शनैः मनुष्य की योग्यता के अनुसार उसे ईश्वर ने ज्ञान दिया है" यह उनका मत दोष रहित नहीं है। क्योंकि यह बात हम सहज ही में जान सकते हैं कि एक

पक्ष का ज्ञान दूसरे पक्ष के ज्ञान से उल्टा और भिन्न है। ईश्वरदत्त ज्ञान में भिन्नता की सम्भावना नहीं होती, क्योंकि सर्वशक्तिमान् न्यायी ईश्वर एक को एक दूसरे को दूसरा ज्ञान कभी नहीं देता। जब सृष्टि क्रम में सर्वत्र ईश्वर की समता दृष्टि में पड़ती है, तब इसी एक विषय में उसका प्रतिकूल व्यवहार कैसे हो सकता है? इससे स्पष्ट है कि परमेश्वर ने योग्यता के अनुसार शनैः शनैः मनुष्य को भिन्न २ ज्ञान नहीं दिया है। प्रत्युत सबको एक समान ही ज्ञान दिया है। और वह आर्य लोगों के मतानुसार वेद द्वारा ही दिया हुआ समझना चाहिये। आर्य लोग जिस प्रकार वेद को ईश्वर प्रणीत मानते हैं, उसी तरह मुसलमान कुरान को मानते हैं। क्रिश्चियन लोग बाईबिल को मानते हैं। जब ईश्वर एक ही है, तब यह बिल्कुल असम्भव है कि उसने तीन पुस्तकें तीन भिन्न २ समयों में उत्पन्न की हों। क्रिश्चियन और मुसलमान भा‍ई कहते हैं कि "पहले की भूलों को सुधारने के लिये उसे दूसरी नवीन पुस्तकें बनाने की आवश्यकता हुई।" पर उनके इस कथन में कुछ भी सार नहीं। ईश्वर के सर्वोत्तम गुणों पर विचार करते हुये यह कहना "कि उसके हाथ से ऐसी भूलें होती हैं और पीछे से वह उनका सुधार करता है मानो ईश्वर की अवहेलना करनी है। यह नास्तिकता की ही श्रेणी में समझना चाहिये। जिसके हाथ से भूल हो वह ईश्वर ही कैसा? यह कहना कैसे सम्भव है कि ईश्वर ने तीन पुस्तकें भिन्न समय में बनाईं? तीन नहीं, किन्तु एक पुस्तक अवश्य ही उसकी रची हुई होनी चाहिये। उन तीन पुस्तकों में से ईश्वर प्रणीत कौन सी पुस्तक है, इसका हमें यहां विचार करना है। जब तक मनुष्य पक्षपात की दृष्टि से वर्ताव करता है, तब तक उसमें सत्यासत्य निर्णय करने की शक्ति नहीं आती। परन्तु जिज्ञासु लोग सिर्फ यथार्थ को ही ग्रहण करते हैं। राज्याधिकार, व्यापार आदि व्यवहार, रण संग्राम, जय विजय, इत्यादि सब एक तरफ रख हमें यह देखना चाहिये कि—"सच क्या है, और ईश्वर प्रणीत पुस्तक

कौनसी है।" संसार में जितना कुछ पीला है; वह सब सुवर्ण नहीं है। सुवर्ण की तरह पीतल भी पीले रंग का होता है। अग्नि उसे कहना चाहिये, जिसमें दहन शक्ति हो, अन्य लक्षणयुक्त वस्तु को अग्नि नहीं कह सकते। बस इसी तरह अलौकिक ईश्वरतुल्य शक्ति हो, उसी को 'ईश्वर' कहना चाहिये। और सृष्टि के आरम्भ में जो पुस्तक निर्माण हुई हो, उसे ईश्वर प्रणीत मानना चाहिये। सृष्टि के उत्पत्ति के बाद बहुत समय पीछे निर्मित होने वाली पुस्तक को ईश्वर प्रणीत नहीं कह सकते। बस, जब कोई राजा किसी नवीन राज्यों को अपने अधिकार में लेता है, तब वह उस राज्य में सर्वत्र शान्ति फैलाने के लिये पिनलकोड के समान एक कानून जारी करता है। इसी प्रकार इस पृथ्वी के समान एक बड़े राज्य में बसने वाले लोगों के नियम के लिये ईश्वर के द्वारा कोई न कोई न्याय पुस्तक अवश्य निर्मित होनी चाहिये। जिस राज्य में किसी प्रकार का भी नियम नहीं होता और छोटे बड़े सब अपराधियों को एक ही दण्ड दिया जाता है वह राज्य राजा के लिये एक कलंक स्वरूप है, परन्तु ईश्वर सब राजाओं में एक सच्चा और न्यायी राजा है। उसके हाथ से "अन्धेर राज्य" जैसा व्यवहार त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। उसके राज्य में सर्वत्र न्याय आचरण होने के लिये कोई नीति ग्रंथ अवश्य होना चाहिये। अब नीतिग्रन्थ कौन है यही विचार करना आज का हमारा कर्तव्य। संसार के सारे तत्ववेत्ता वेद का प्राचीनत्व स्वीकार करते हैं। अंगरेज पंडित प्रोफेसर सर मोक्षमूलर भी इस बात को स्वीकार करते हैं। निदान यह बात सिद्ध हो गई है कि दुनियां की लायब्रेरी (पुस्तकालय) में वेद ही सबसे प्रथम अतएव प्राचीनतम ग्रन्थ है। कुरान शरीफ को निर्मित हुए अभी सिर्फ १३०० वर्ष मात्र हुए हैं वह हजरत मुहम्मद पैगम्बर साहब का बनाया हुआ है। बाईबिल को बने कितने वर्ष हुए सो बताने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि छोटे बच्चे भी इस बात को जानते हैं कि आजकल

ईसवी सन् १८८४* चल रहा है। मैंने पारसियों का गाथा ग्रन्थ देखा है। उस पर से मैं कह सकता हूँ कि पारसी लोगों के पूज्य साधु जर दस्त और व्यास मुनि का वाद विवाद हुआ है। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि पारसी लोगों की पुस्तक से भी हमारा वेद पुराना है महाभारत ग्रन्थ को बने पांच हजार वर्ष से कुछ अधिक हुए। इससे भी बहुत पहले बाल्मीकीय रामायण का निर्माण हुआ। और बाल्मीकीय रामायण से भी बहुत काल पूर्व हमारे वेद उत्पन्न हुए। वेद को हुए बहुत बड़ा काल हो गया। इसके पहले की कोई भी पुस्तक नहीं पाई जाती। सबसे पहले वेद ही ग्रंथ है। यदि कोई ईश्वर निर्मित पुस्तक हो सकती है तो वह वेद ही है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। सत्य और अखण्ड ज्ञान का लक्षण यह है कि उस में सृष्टि क्रम के विरुद्ध बात न होनी चाहिये। भूगोल में हिन्दुस्तान के पश्चिम अफगानिस्तान लिखा हुआ है। अब उसे यदि कोई नकशे में पूर्व दिशा की ओर बतलावे तो यह परस्पर विरोध है। नकशा और भूगोल यदि एक ही ग्रन्थकार ने बनाये हों तो वह अविद्वान् होना चाहिये। इसी प्रकार वेद में यदि सृष्टि क्रम के विरुद्ध कोई बात हो तो उसका कर्त्ता भी अविद्वान् होना चाहिये। अथवा उसका कर्त्ता और ईश्वर दोनों भिन्न २ होने चाहिये। ईश्वर सर्वज्ञ सर्व विद्या कला प्रवीण हैं और वह अविद्वान् नहीं है। उसके हाथ से परस्पर विरुद्ध बात कदापि नहीं हो सकती। पुस्तक में कुछ और ही लिखा हो और सृष्टि क्रम दूसरा ही हो ऐसा उससे कभी नहीं हो सकता। ईश्वर कृत पुस्तक में कोई भी दोष न होना चाहिये। और होना सम्भव भी नहीं। आजकल के कितने ही विद्वान् प्रश्न करते हैं, कि तुम वेद को तो ईश्वर कृत मानते हो, परन्तु उसमें जो ऊटपटांग बातें लिखी हैं सो क्या है? उनका यह आक्षेप ऊपर से देखने में तो सत्यभासता है, तथापि इसमें सत्यता कितनी है सो हमें देखनी चाहिये। वेद में क्या क्या दोष है इसका हमें अब विचार करना चाहिये।

---

*जिस वर्ष स्वामी जी ने व्याख्यान दिया था।

"कर्त्ता के बिना कार्य नहीं होता" यह सृष्टिक्रम का एक मुख्य सिद्धान्त है। "बाप नहीं पर मैं हूँ" यह कहना कितनी मूर्खता से भरा हुआ है ? जिस पुस्तक में मा बाप के बिना किसी के उत्पन्न होने का वर्णन हो वह पुस्तक ईश्वर प्रणीत कभी नहीं हो सकती। वेद में सृष्टि क्रम के विरुद्ध कुछ नहीं लिखा है। यह बात वेद का मर्म जानने वाले ही जान सकते हैं। हमें यह अभिमान सदैव रखना चाहिये कि "हम आर्य हैं। हमारे पूर्वज सब विद्याओं में कुशल थे।" पर बड़े खेद और लज्जा की बात है कि वेद का वास्तविक अर्थ हम में से अनेक विद्वान् कहलाने वाले भी नहीं जानते। वेद में परस्पर विरुद्ध कोई बात भी नहीं मिल सकती हमें यदि इस प्रकार का परस्पर विरोध वेद में कहीं भासता हो तो इसका कारण यही है कि—हम वेद का वास्तविक अर्थ नहीं जानते।" वेद में पक्षपात युक्त कोई भी बात लिखी हुई नहीं देखी जाती। हमारे ऋषियों को "उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" की शिक्षा किस से मिली थी ? केवल वेद ही इस शिक्षा का कारण था। वेद में यह बात नहीं कि एक देश अथवा एक जाति का कल्याण हो और दूसरे का न हो। परमेश्वर के लिये सब प्राणी एक से हैं। आर्य, शूद्र, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, कसाई, इत्यादि भेद उसके पास नहीं। सारी मनुष्य जाति ही नहीं, किन्तु सर्व प्राणी मात्र उसे समान है। लड़ाई झगड़ा जो कुछ होता है सो सब हमारे तुम्हारे दुराग्रह से ही। वेद में पूर्ण न्याय है परन्तु जो कोई मनुष्य हमें बिना कारण दुःख दे तो कृश्चियन लोगों के पुस्तक के अनुसार उदार बुद्धि से एक थप्पड़ खाने के बाद दूसरा गाल आगे न करते हुये" अपनी रक्षा के लिये न्याय से उसका प्रतिकार करना चाहिये। (उसका निवारण करना चाहिये) उसको समझाना चाहिये। ऐसा करना कोई सृष्टि क्रम के विरुद्ध बात नहीं। इसे सृष्टि क्रम के अनुसार ही समझना चाहिये। सब प्राणी ईश्वर निर्मित हैं। वह एक को प्रिय और दूसरे को अप्रिय कदापि नहीं समझता। जब सभी उसकी प्रजा है, तब

वह यह कदापि नहीं कह सकता कि अमुक को मार डालो। हिंसा करना जब ईश्वर को अप्रिय है तब वेद में हिंसा करने के लिये वह कैसे आज्ञा दे सकता है? कई लोग अपने को बहुत बुद्धिमान् और चतुर समझते हैं और कहते हैं कि वेद में हिंसा करने के लिये सम्मति है। परन्तु यह उनकी भारी भूल है। संस्कृत भाषा ऐसी है जिसमें शब्दों के अनेक गर्भित अर्थ होते हैं। एक एक शब्द के भिन्न भिन्न अनेक अर्थ होते हैं। जहां जो शब्द युक्त हो, वहां उसकी योजना और अर्थ करना चाहिये। वेद के शब्द का योग्य अर्थ करते समय बहुत प्रमाद हुआ है, होता है, और भी होगा। "सैंधव" का अर्थ 'घोड़ा' और "नमक" है, परन्तु भोजनादिक के समय सैंधव शब्द का प्रयोग आया हो तो वहां इसका अर्थ योग्य और युक्त नमक न कहते हुए यदि कोई कहे कि हमारे पूर्वज सैंधव अर्थात् घोड़े का उपयोग करते थे अर्थात् भोजन में घोड़े का मांस खाते थे" तो इस कुत्सित अर्थ को कौन स्वीकार करेगा? अर्थ ऐसा करना चाहिये कि जिससे पूर्वापर सम्बन्ध के साथ संदर्भ हो। लोगों को यह बतलाने के लिये कि हमारा कहना सत्य है शब्दों का मनमाना और तोड़ मरोड़ कर अर्थ करके लोगों के मन पर झूठी बात न बैठानी चाहिये। अदिति शब्द का मनमाना अर्थ कर के विद्वान् वेद की हंसी उड़ाते हैं। जैसे वह कहते हैं कि "अदिति हमारे चतुर सूर्य की माता है।" सूर्य अदिति के उदर में कैसे समा सका। इससे जान पड़ता है कि तुम्हारे वेद में सच्ची बातें बहुत कम है। जिसको तुम सच्चा कहते हो वह निरी कल्पना है।" इस प्रकार के असंगत प्रश्न करने वालों पर हमें दया आती है। अदिति शब्द का अर्थ प्रकाश अन्तरिक्ष, माता, पिता इत्यादि है और ऐसे ही अर्थ का मेल भी मिलता है। सम्प्रदायी लोग अर्थ का अनर्थ करके कैसी बड़ी भूलें कर डालते हैं। अन्तरिक्ष में सूर्य उत्पन्न हुआ ऐसा यथार्थ अर्थ न करते हुए मनमाना अर्थ करके वेद के समान पूज्य ग्रन्थ को दोष लगाने लगे हैं!! "अहिंसा परमो धर्मः" यह तत्व वेद में सब जगह मिलता है।

ऐसा होते हुए यह कहना कि—"हिंसा करने में वेद की सम्मति है" कितना असम्भव लगता है। गोमेध, अजामेघ, अश्वमेध, इत्यादि के अर्थ में भी तो लोग भयंकर भूलें करते हैं। यह सिद्ध करने के लिये लोग बद्धपरिकर हो रहे हैं कि प्राचीन काल में हिन्दुओं में हिंसा होती थी। अन्न का एक नाम "गौ" है और घृत का नाम "मेध" है। तथापि 'गोमेध' का अर्थ गौ की हिंसा करते हैं। गाय को माता से भी अधिक मानकर पूजने वाली केवल हिन्दू जाती ही है। ऐसी पूज्य मानी हुई गोमाता को क्या वे कभी मार सकते हैं? लोग अर्थ का अनर्थ करके अनेक कुतर्क करते हैं। यह बड़े खेद की बात है। "वेद में हिंसा बिलकुल नहीं है' इस विषय पर मैं एक पुस्तक तैयार कर रहा हूँ। मैं यह बात अनेक संस्कृत ग्रंथों के आधार पर सप्रमाण सिद्ध करने वाला हूँ कि—'हम लोग मांसाहारी न थे'। अश्वमेध, अजामेध इत्यादि के अर्थ का भी अनर्थ हुआ है। 'अश्व' का अर्थ ईश्वर होता है तथा 'अजा' का अर्थ अजन्मा और बकरी भी होता है, पर इस जगह ऐसा करना अनुचित है। हव्य पदार्थ मांस नहीं हो सकता है कपूर, कस्तूरी, चन्दन, अगर इत्यादि सुगन्धित पदार्थों का ही हवन होता है। हवन करने का उद्देश्य वायु शुद्ध करना है। मांस का हवन करने से हवा शुद्ध नहीं होगी, प्रत्युत बिगड़ेगी "प्राणियों की हत्या करने से नरक की प्राप्ति होती है। मान लो कि प्राणियों की हत्या करने से यदि स्वर्ग प्राप्त हो तो नरक की प्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये ?" यह एक कवि का कथन है और ठीक है। यह मैं अच्छी तरह सिद्ध कर दूंगा कि—वेद में हिंसा नहीं है।' इसी प्रकार जिस ग्रंथ में किसी की निन्दा या स्तुति नहीं, वही ग्रंथ ईश्वर कृत होना चाहिये, वेद में यदि कर्त्ता के तौर पर किसी का नाम होता तो उसे मानव कृत पुस्तक मानते। क्योंकि कर्त्ता की जगह किसी का नाम आने से यह समझना चाहिये कि ग्रंथ के पहले उसका कर्त्ता था। परन्तु वेद में ऐसा कोई भी नाम नहीं। यह ईश्वर निर्मित ही है। सृष्टि के प्रलय काल में अन्तर्धान हो जाता है। उसका आदि या अन्त नहीं अर्थात् वह अनादि है। पूर्वमीमांसा में (जिसको

कर्ममीमांसा भी कहते हैं) कहा है कि वेद में सर्व साधारण पदार्थों का ही वर्णन है परन्तु "श्रुति सामान्यमात्रम् ।" विशेष व्यक्ति का उसमें वर्णन नहीं। इससे भी मालूम होता है कि वेद मानव प्रणीत नहीं है। सृष्टि के आदि और अन्त में जो विद्या रहती है वही परमेश्वर दत्त है। अनेक मत मतान्तर जो देखे जाते हैं वे सब मानव कृत ग्रंथ में ही होते हैं।

ईश्वर प्रणीत पुस्तक में पूर्वापर विरोध नहीं होता। कुरान इत्यादि ग्रंथों में लिखा है कि "ईश्वर ने पहले के सब ग्रंथों को रद्द करके यह कुरान शरीफ नवीन पुस्तक रची है।" परन्तु ऐसा कहना मानो ईश्वर को दोष भागी ठहराना है। पहले जो कुछ भूल हुई थी उसे सुधारने के लिये यह नवीन ग्रंथ बनाना पड़ा इससे सिद्ध है कि ईश्वर से पहले भूल हुई थी। मनुष्य की तरह यदि ईश्वर भी भूल करने लगे तो फिर वह ईश्वर काहे का ? उससे त्रिकाल में भी भूल नहीं हो सकती। और जब भूल नहीं तब उसे सुधारने की आवश्यकता ही क्या ? न ईश्वर को पहले की पुस्तक रद्द करने का मौका आया और न भविष्यत् में आयेगा। आप विचार सकते हैं कि ईश्वर प्रणीत पुस्तक कौन सी है ? बाईबिल और अन्य धर्म पुस्तकों का भी यही हाल समझ लीजिये। ईश्वर प्रणीत यदि कोई पुस्तक है तो वह बेद ही है यह सिद्ध हो चुका है। वे कहते हैं "यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के आठवें मन्त्र में कहा है कि ईश्वर निराकार है' 'सपर्य-गाच्छुक्रमकायमव्रणम्" इत्यादि। और दूसरी जगह यजु० ३१। १ में कहा है कि ईश्वर "सहस्रशीर्षासहस्राक्षः" इत्यादि है यह क्या पूर्वा पर विरोध नहीं है ? परन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि यथार्थ ज्ञान न होने से अर्थ करने में बे भूल करते हैं।

बेद का गर्भित अर्थ बहुत सा परिश्रम किये बिना सहज ही समझ में नहीं आता। रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर की एक आध पुस्तक पढ़कर अथवा कोष की सहायता से बेद का अर्थ समझने की योग्यता आ जावे सो नहीं हो सकता। सहस्रशीर्षा इत्यादि मंत्र

का अर्थ लोग यों करते हैं कि ईश्वर के हजार मुंह, हजार आंखें और हजार हाथ पैर इत्यादि हैं पर ऐसा नहीं है जैसे कि यह कहें कि "आज सभा में पांच सौ आदमी थे अर्थात् पाच सौ मनुष्य थे इसी प्रकार ईश्वर के हजार मस्तक हैं इसका मतलब यह है कि जिसमें हजारों मनुष्य रहते हैं वह सहस्रशीर्षा ईश्वर है। यह कहना अलंकारिक है। "जहां पंच वहां परमेश्वर" यह कहावत सुप्रसिद्ध हैं। बस "सहस्रशीर्षा" का गर्भित अर्थ भी ऐसा ही है। जिस सर्वव्यापक परमेश्वर में यह जगत् समाविष्ट है उसे तू मान ऐसा उसका वास्तविक अर्थ है। इसमें कोई पूर्वापर दोष नहीं आता। प्रत्येक ग्रंथकार ग्रन्थ के आदि और अन्त में अपना नाम और संवत् लिखता है। वेद में यह कुछ नहीं देखा जाता। वह मनुष्य प्रणीत नहीं है। वेद की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है यह उसमें लिखा है।

"वेद व्यास" का अर्थ है वेद का व्यास। जैसे कि वृक्ष में व्यास एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाता है अर्थात् उसमें निष्णात होता है, उसी को "वेद व्यास" कहते हैं। वेद के समान गहन फिलासफी का कर्त्ता कितना बड़ा विद्वान् होना चाहिये ? ऐसा श्री शंकराचार्य ने भी "शास्त्रयोनित्वात्" इस सूत्र के भाष्य में कहा है। कणाद ऋषि भी कहते हैं कि—"वेद हमें प्रमाण भूत मानना चाहिये। क्योंकि उसमें सारी बातें बुद्धिपूर्वक हैं। जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशित होकर अन्य पदार्थों को प्रकाश देता है वैसे ही वेद स्वतः प्रमाण है। सूर्य को ढूंढ़ने के लिये प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार वेद को दूसरे प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" के अनुसार मान लेने योग्य यह नहीं है। न्याय शास्त्र से यह सिद्ध होता है। अपने अनुभव में जो आवे उसी को सत्य मानना चाहिये। निम्न लिखित वार्त्ता के अनुसार विचार शून्य होकर मूर्खता से यह न मान लेना चाहिये कि शास्त्र में जो कुछ है वह सब सत्य ही है। एक समय ऐसा हुआ कि किसी अज्ञानी मनुष्य से एक आदमी ने जाकर कहा कि "अरे तू यहां आनन्द में बैठा है, और तेरी लुगाई का क्या हाल है सो तुझको कुछ भी पता नहीं। उस

बिचारी पर बड़ा भारी सङ्कट आ पड़ा है। उसका पति मर गया है और वह बिचारी विधवा हो गई है।"

यह दु:खात्मक समाचार सुन कर वह अज्ञानी मनुष्य छाती पीट २ कर शोक करने लगा और गद्गद् कण्ठ होकर रोने लगा। उस मूर्ख को यह पता न था कि जीते हुए पति की लुगाई विधवा कैसे हो सकती है ? तात्पर्य यह कि हम लोग सारासार विचार न करते हुए केवल काल्पनिक शास्त्रों पर भरोसा रख व्यर्थ भ्रम में पड़ते हैं। शास्त्र में कहा है यह एक मुख्य कारण नहीं है यह अति स्पष्ट रीति से सिद्ध हो सकता है। इसीसे हम कह सकते हैं कि वेद ही केवल ईश्वर प्रणीत हैं ईश्वर के अतिरिक्त वे और किसी से रचे नहीं गये। इसी तरह वे किसी देश भाषा में भी लिखे नहीं गये। यदि किसी देश की भाषा में होते तो उन्हें मनुष्य प्रणीत कह सकते थे। वेद की भाषा बिल्कुल भिन्न और स्वतन्त्र है। जो कोई कहता है कि वेद संस्कृत में हैं यह उनकी भूल है। वेद की भाषा और संस्कृत भाषा अलग अलग हैं। वेद संस्कृत में नहीं हैं यह सुनते ही कितने लोग मारने दौड़ेंगे। वे कहेंगे कि यह कहां का गप्पाष्टक लड़ा रहा है। पर किसी को यह नहीं समझना चाहिये कि मैं ही ऐसा कहता हूं। अंग्रेज महापंडित मोक्षमूलर ने कहा है कि संस्कृत में पाणिनिकी पुस्तक सब से श्रेष्ठ है। और वही पाणिनि कहता है कि वेद की भाषा और संस्कृत भाषा दोनों भिन्न भिन्न है। जैसे आजकल तुम्हारी हमारी भाषा मराठी गुजराती, हिन्दी इत्यादि है, उसी प्रकार प्राचीन काल में आर्य लोगों की भाषा संस्कृत थी। परन्तु यह भाषा कहां से निर्माण हुई ? वेद ही उसका मूल है। वेद से जैसे संस्कृत हुई है उसी तरह संस्कृत से प्राकृत, मराठी, गुजराती, हिन्दी, बंगला, कनाडी इत्यादि अनेक देश भाषायें बनी है। वेदभाषा संस्कृत भाषा से बहुत पहले की है। 'वेद में मतमतान्तर बिलकुल नहीं'। इसीसे सिद्ध होता है कि वह एक ही के द्वारा बना हुआ है और वह एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर ही है। वेद में पुनर्जन्म माना गया है। पुनर्जन्म न मानने वाले के प्रति यह प्रश्न है

कि एककी आंख फूटी होती है, एक लूला होता है, एक गूंगा होता है और एक बहिरा होता है ऐसे नाना प्रकार के मनुष्य हमारी दृष्टि पड़ते हैं, ऐसा होने का क्या करण है ? इसके जबाव में प्रतिपक्षी कहेगा कि ईश्वर की मरजी। तो क्या ईश्वर ऐसा अन्यायी और पक्षपाती है कि बिना अपराध किसी को सुख दुःख भोगना पड़े। इससे स्पष्ट है कि पुनर्जन्म है। सब विद्याओं की माता जिसमें सब विद्यायें समाविष्ट हुई हैं, वही परमेश्वर कृत पुस्तक है। यह बात सप्रमाण सिद्ध करने के लिए अनेक ऋषि वचन वर्तमान हैं। यह सिद्ध करने में हम लेशमात्र भी नहीं डरते। जिसके पास खरा रुपया मौजूद है उसको उसे तपाना नहीं पड़ता। ऐसी कोई भी विद्या अस्तितव में नहीं जो वेद में न प्रकट हुई हो। महामुनि शंकराचार्य का भी यही मत है कि बिना परमात्मा के ऐसी पूर्णता नहीं आ सकती। वेद ने ही ज्ञान की प्रेरणा की है और क्रम क्रम से मनुष्य को वह ज्ञान प्राप्त हुआ है। परमेश्वर ने सृष्टि निर्माण की, उसके साथ ही सृष्टि की सुव्यवस्था के लिये उसने वेद निर्माण किया। वेद से ज्ञान प्राप्त करके सब ऋषियों ने उसे दूसरों को वितरण किया। ज्ञान की उत्पत्ति परमात्मा से हुई है और वह उसने वेद के द्वारा निर्माण किया है। शनैः शनैः उस ज्ञान की उन्नति या अवनति होती गई। ब्राह्मण ज्यों ज्यों वेद का पठन छोड़ते गये, त्यों त्यों वह ज्ञान लोप होता गया। जो लोग अपने को आर्य मानते है और हिन्दू होने का अभिमान रखते हैं; उन्हें अपनी सन्तान को वेद का कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य देना चाहिये। बड़े बड़े बी० ए०, एम० ए० हो गये पर धर्म सम्बन्धी ज्ञान में बिलकुल नपुंसक ! यह कितने शोक की बात है। धर्म का ज्ञान भान विलकुल नहीं होता। वेद की जानकारी जिसे कुछ भी न हो उसे धर्म सम्बन्धी ज्ञान कैसे प्राप्त हो ? बिना धर्म के उन्नति की आशा निराशा मात्र हो गई है। यदि आप आर्य होने का अभिमान रखते हैं तो आप वेद अवश्य पढ़ें। आशा है कि आप लोग अपनी सन्तान को सत्यधर्मी बनाने का प्रयत्न करेंगे।

——*——

ईश्वरोपासना

प्रिय सज्जनो ! इस सृष्टि में विविध प्रकार के मनुष्य दृष्टि पड़ते हैं। स्वभाव, आचार, विचार, कर्त्तव्य, आकृति इत्यादि विषयों में भिन्नता देखने में आती है, प्रत्येक विषय में प्रत्येक का ज्ञान और समझ भिन्न भिन्न होती है। जैसे इस जगत् में कई ईश्वर के मानने वाले होते हैं। वैसे ही कितने ही नास्तिक पंथानुयायी भी होते हैं। कितने ही लोग ईश्वर का अस्तित्व अन्तःकरणपूर्वक नहीं मानते, किन्तु सिर्फ संसार के लोक व्यवहार के अनुसार चलने के लिये मानते हैं। कई लोगों की ऐसी द्विधा समझ होती है कि ईश्वर नहीं है। कई लोगों का ऐसा मत है कि अन्तकरण से तो वे ईश्वर को नहीं मानते पर लज्जा के भय से ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। कई लोग कहते हैं कि "ईश्वर है या नहीं, इस विषय में वाद विवाद करके व्यर्थ मन को कष्ट देने से क्या लाभ है ?" जब इस विषय में मनुष्यों के ऐसे विभिन्न मत हैं तब ईश्वरोपासना विषय के ऊपर बोलने के पहले इसका निर्णय करना चाहिए कि "ईश्वर है या नहीं। क्योंकि यदि ईश्वर ही नहीं तो उपासना किसकी की जाय ? इसलिये पहले यह जांच करनी चाहिए कि इस जगत् में ईश्वर है या नहीं। मुझ जैसे अल्पबुद्धि वाले मनुष्य का इस विषय पर विवेचन करना असम्भव है। क्योंकि यह विषय इतना गहन है कि योगिजनों के लिए भी अगम्य है। तो फिर हमारी क्या कथा है ? तथापि जैसे एक भयंकर तूफान में फंसे हुए अग्निबोट को बचाने के लिये उसका कप्तान "अब क्या करें ? क्या उपाय है ?" इत्यादि विचारों में न पड़; समय आजाने पर धैर्यच्युत नहीं होता, बल्कि शक्ति के अनुसार जो हो सकता है प्रयत्न करता है, उसी प्रकार मेरी बुद्धिरूपी नाव इस संसार सागर के झपाटे में डोलने लगी है उसे इच्छित स्थल में ले जाने की शक्ति के अनुसार मैं प्रयत्न करता हूँ। उसमें सफल होना सर्वशक्तिमान् ईश्वर के हाथ में है। न्यायालय में "अमुक बात ऐसी है" यह

सिद्ध करने के लिये प्रमाण की आवश्यकता है और "अमुक बात ऐसी नहीं है" इसके लिये विशेष प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। चोरी का अभियोग साबित करने के लिये अपने पास प्रमाण होना चाहिए। "मैं अमुक समय में अमुक स्थान पर था" ऐसा प्रमाण यदि वह लाये तो विरुद्ध पक्षपात वाले को उसके सम्बन्ध में प्रमाण देना चाहिये। इसी प्रकार ईश्वर न मानने वाले को यद्यपि विशेष प्रयास करने को आवश्यकता नहीं तथापि "वह नहीं है" यह सिद्ध करने के लिये उसके पास अच्छा प्रमाण होना चाहिए।

"यथा घटादिकार्यं सकर्तृकम् तथा क्षित्यंकुरादिकमपि नहि तत्कर्तृत्वमस्मदादीनां सम्भवति तत्कर्तृत्वेनेश्वरसिद्धिः।" हमारे नैयायिक लोग ईश्वर के अस्तित्व के लिये अनेक प्रमाण मानते हैं। कर्त्ता के बिना कोई भी वस्तु बनी हुई इस जगत् में नहीं दिखती। कुम्हार के बिना घड़ा कैसे बन सकता है? बिना कर्त्ता के कोई भी कार्य नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है। हमें जो इतना बड़ा तेजस्वी प्रचंड सूर्य दिखाई देता है। उसका बनाने वाला क्या कोई न होना चाहिये? क्या यह आप ही आप हो गया? नास्तिक लोग ऐसा मानते हैं वे ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उसका कथन है कि जब सूर्य बना ही नहीं वह स्वयं सिद्ध है तब उसके बनाने वाले की क्या आवश्यकता है उनकी यह युक्ति कहां तक सत्य है, इसकी जांच अब हमें करनी चाहिए, मनुस्मृति के बारहवें अध्याय में लिखा है कि अपने तर्कवितर्क से ही सत्य का निर्णय करो। "बाबावाक्यं प्रमाणं" यह सत्य प्रमाण नहीं है इसके अनुसार चलना छोड़ दो। इसी प्रकार मैं तुम से यह आग्रह नहीं करता कि—अमुक बात एक अमुक पुस्तक में लिखी है, उसको तुम सच मानो।' यदि कोई ऐसा करे भी तो यह बात मुझे प्रिय भी नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाण से ही जब हमारी पक्की खातिरी (विश्वास) हो जाय, तभी उसे सच मानना चाहिये। सिर्फ वेद पर ही अपना सारा विश्वास नहीं छोड़ देना चाहिये। अच्छा इस जगत् की उत्पत्ति के विषय में पहले हमें विचार करना चाहिये।

पदार्थ विद्या, सृष्टिक्रम शास्त्र, भूगर्भविद्या इत्यादि शास्त्रों के देखने से मालूम होता है कि इनमें जो कुछ कहा गया है वह सब सप्रमाण है। इन पुस्तकों में मतमतान्तर देखने में नहीं आते। न्याय शास्त्र सिद्ध करता है कि, "कारणमन्तरा कार्यं नोत्पद्यते" अर्थात् जैसे घट बनाने के लिये कुम्हार की आवश्यकता है कुम्हार के बिना वह नहीं बनता वैसे ही पृथ्वी को बनाने के लिये कुम्हार की तरह कोई कर्त्ता अवश्य होना चाहिए। वह आप ही आप स्वयं नहीं बन सकती। जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं वह असंख्य परमाणुओं के योग से बनी है। चाहे कोई पदार्थ हो उसका एकीकरण अनेक परमाणुओं से बना हुआ है। जैसे फौलाद अनेक परमाणुओं से बना है। वैसे ही हीरा भी परमाणुओं के योग से ही बना है। जगत में एक भी ऐसी चीज नहीं जो परमाणुओं से न बनी हो। अर्थात् प्रत्येक वस्तु प्रथम से परमाणु रूप होती हैं। पर जब उनका एक जगह संयोग होता है तब वह पूर्ण रूप से अपना स्वरूप धारण करती है। भिन्न भिन्न रहने वाले परमाणुओं का एकत्व होना और एकत्व हुए परमाणुओं का अलग होना ये दो स्वतन्त्र क्रियाएं हैं। यदि उसका वियोग न हो तो संयोग भी न होगा, और यदि संयोग न हो तो वियोग नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है कि किसी विशेष समय में पृथ्वी के परमाणु अलग अलग थे। और यदि वे ऐसे न होते तो एकत्र भी न हो सकते थे। ऐसी दशा में जिस पृथ्वी पर हम आज निवास कर रहे हैं उसका अस्तित्व ही न होता। जैसे गेहूं के आटे में पानी डाल कर जब हम गूंधते हैं तो उसका एक लौंदा बन जाता है और अलग अलग रहने वाले परमाणुओं का संयोग हो जाता है। बस यही हाल इस पृथ्वी का है। प्रारम्भ में असंख्य परमाणु थे और वे किसी न किसी साधन से एकत्र हुए। और इस कृति का (जिसे आज प्रत्यक्ष देखते हैं) कर्त्ता कोई न कोई अवश्य होना ही चाहिए। यह निर्विवाद है। इस विषय में फिजिकल सायन्स और वेद दोनों की सम्मति बहुत बड़ी देखने में आती है। परमाणु अनादि है

ऐसा उनमें कहा है। वे उत्पत्ति और नाश से रहित है। सूर्य भी परमाणुओं से बना है। अविद्वान् लोगों को यह उपर्युक्त कथन ठीक न जान पड़ेगा। तथापि शास्त्र शिक्षित लोगों को तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि अलग अलग रहे हुए परमाणु मिल सकते हैं और संयुक्त हुए परमाणु अलग अलग होते हैं। नास्तिक लोग भी पृथ्वी का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। ऐसा कोई भी न मिलेगा जो मानता हो कि पृथ्वी का अस्तित्व ही नहीं है। जैसे जलतत्व के तीन रूपान्तर, (बर्फ, पानी और भाप) होते हैं वैसे ही सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, तेज इत्यादि सबके परमाणुओं में थोड़ा बहुत रूपान्तर होता ही है। सांख्य शास्त्रकार ने कहा है कि ग्रह पृथ्वी प्रारम्भ में प्रकृति स्वरूप में थी। तदन्तर वायु रूप में आई इसके बाद वह गोलाकार हो अण्डाकृति हुई और नारंगी की तरह मानी गई। पदार्थ विज्ञान शास्त्र में भी ऐसा ही वर्णन है, इससे सिद्ध होता है, कि पृथ्वी एक बार नहीं बनी है। विद्वान् नास्तिक लोग भी यह बात स्वीकार करते हैं। आजकल के नास्तिक लोगों का बड़ा विचित्र हाल है। एक दो अंग्रेजी विद्वानों के ग्रन्थ पढ़कर यह चतुर लोग अपने पूर्वजों के इस विषय के ऊपर बनाये हुए ग्रन्थों की ओर बिलकुल ध्यान न दे यह कहा करते हैं कि यह सृष्टि कुदरत से ही (नेचर से ही) बनी है। अपने आप ही निर्मित हुई है। इसका बनाने वाला कोई भी नहीं और वह किसी से बनाई भी नहीं गई। बिना कर्त्ता के संसार में कोई भी वस्तु नहीं मिलती। "बाप नहीं, मैं हूँ" यह कहना जैसे मूर्खतापूर्ण है वैसे ही उपर्युक्त कथन भी समझना चाहिये। पृथ्वी का बनाने वाला कोई न कोई होना ही चाहिये, यह निर्विवाद है। यह बात मैं मानता हूँ कि लोह चुम्बक में जैसे आकर्षण शक्ति है वैसे ही इस पृथ्वी के परमाणुओं में भी आकर्षण शक्ति है। इसलिये पदार्थों में वजन होने से ही कोई वस्तु पृथ्वी पर नहीं गिरती किन्तु सिर्फ पृथ्वी के आकर्षण से नीचे आती है इस विषय का अनुभव

हम को उत्तर ध्रुव* प्रदेश में अच्छा मिल सकता है। हवा से, अन्न से और दूसरे अन्य कारणों से हृष्ट पुष्ट और शुष्क होने वाले मनुष्य का उदाहरण न लेते हुए एक लोह खण्ड का ही उदाहरण लीजिये, उसके वजन में किसी प्रकार का फेर फार नहीं हो सकता। जिस लोह खण्ड का वजन यहां एक सेर होता है उसका उत्तर ध्रुव के पास डेढ़ सेर हो जाता है इसका कारण क्या है? इसका कारण आकर्षण को छोड़ अन्य कुछ नहीं, यहां पदार्थ का मध्याकर्षण होने से उसके वजन में वृद्धि नहीं होती। पर ध्रुव के पास विशेष आकर्षण होने के कारण वजन में वृद्धि होती है। इस से स्पष्ट है कि पृथ्वी के परमाणुओं में आकर्षण शक्ति है। पदार्थ विद्या जानने वाले नास्तिक लोग कहते हैं कि "परमाणुओं में आकर्षण शक्ति होने के कारण वे एकत्र हुए हैं। इस कथन में क्या शंका हो सकती है? एकत्र होने में दूसरे की क्या आवश्यकता है?" उनका यह कथन बाह्य रूप से

---

* यहां पर मुझसे यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि सम्प्रति जो लोग कहते हैं कि गुरुत्वाकर्षण का आविष्कार न्यूटन साहब ने किया सो न्यूटन को हुए तो अभी लगभग चार ही सौ वर्ष हुए हमारे यहां यह विद्या बहुत प्राचीन काल से मालूम है अर्थात् प्रगट है। वेद की बात जाने दीजिये, हाल के ही ग्रंथ देखने से आपको विश्वास हो जायगा। भास्कराचार्य्य के "सिद्धान्त शिरोमणि" ग्रन्थ को बने लगभग ११०० वर्ष हुए। इसके पहले यह विद्या हमारे लोगों को अवगत होनी चाहिए। यह सभी विद्वान पुरुष स्वीकार करेंगे, सिद्धान्त शिरोमणि में लिखा है कि:—

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्खस्थं स्वाभिमुखे स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति, समे समन्तात्क्व पतत्वियं खे॥

अब कहो कि गुरुत्वाकर्षण का आविष्कार न्यूटन ने किया या हमारे पूर्वजों ने? अपना सोना तो पीतल और दूसरे का पीतल सोना मान बैठने वालों की बुद्धि की बलिहारी!

तो सच मालूम होता है! पर इस विषय में सूक्ष्म विचार करना चाहिये। जब परमाणु पास पास होते हैं तब ही वे आकर्षण कर सकते हैं। यदि वे दूर होते हैं तो आकर्षण नहीं कर सकते और न एकत्र हो सकते हैं। अच्छा यदि वे दूर होते हैं तो आकर्षण कैसे कर सकते? थोड़ी देर के लिये यदि हम यह भी मान लें कि वे दूर-दूर नहीं रहते किन्तु पास पास होते हैं तो जिस समय वे परमाणु एकत्र हुए हैं उस समय वे अलग अलग अवश्य रहे होंगे क्योंकि अलग रहे बिना एकत्र होना कैसा? क्योंकि यह विषय हम पहले ही निश्चित कर चुके हैं। तब क्या उनका अलग अलग करने वाला कोई नहीं होना चाहिये? जैसे उनमें आकर्षण शक्ति है वैसे क्या अलग अलग होने की भी शक्ति है? परन्तु यह शक्ति उनमें नहीं हो सकती। यह अनुभव सिद्ध बात है। इससे सभी को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनको अलग अलग करने के लिये किसी न किसी की आवश्यकता है। पृथ्वी के परमाणुओं में आकर्षण शक्ति होने के कारण ही वे आप ही आप कदापि अलग नहीं हो सकते। नास्तिक लोग इस जगह यह शंका करते हैं कि "परमाणु अलग अलग करने के लिये किसी की आवश्यकता नहीं।" हवा उनको अलग अलग कर देती है। उनका यह कथन भी कहां तक सच है यह देखने के लिये पहले यह विचार करना चाहिये कि हवा क्या चीज है। आज कल की साइन्स विद्या से हमारे देखने में आता है कि हवा कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है! तथा वह आप ही आप नहीं उत्पन्न हो सकती। हवा का घेरा असीम है। यहां तक जाना गया है कि १२ योजन पर्यन्त वायु सघनता से भरी हुई है। इसके बाद ज्यों ज्यों हम ऊपर जाते हैं त्यों त्यों हवा धीरे धीरे कुछ हलकी होती जाती है। नीचे की जड़ और भारी हवा से जब सूर्य के प्रकाश का सम्बन्ध होता है तब वह तप्त और हलकी होकर धीरे धीरे ऊपर को उठती है ऐसे ही चलने से वायु उत्पन्न होती है। इससे हमें स्पष्ट जान पड़ता है कि हवा आप ही आप उत्पन्न नहीं होती किन्तु उष्णता

से ही उत्पन्न होती है। जब उष्णता ही हवा होने का कारण है तब पहले हमें यह निर्णय करना चाहिये कि उष्णता क्या है? उसका कारण क्या है। उष्णता अर्थात् अग्नि के उत्पन्न होने के लिये घर्षण की आवश्यकता है। किसी पदार्थ के घर्षण बिना अग्नि कदापि उत्पन्न नहीं होती। यह अंग्रेजी शास्त्रकारों का कथन है, और हम में से भी प्रत्येक का ऐसा ही अनुभव है। पृथ्वी के परमाणुओं के एकत्र होने के पहले उनको अलग अलग होना चाहिये। और उनको अलग अलग करने के लिये अन्य हवा की आवश्यकता नहीं है यह नास्तिक लोगों का कथन है। परन्तु हवा के उत्पन्न होने के पहले उष्णता की आवश्यकता है। और घर्षण के बिना उसकी उत्पत्ति हो नहीं सकती तथा घर्षण भी कुछ आप ही आप हो नहीं सकता। उसके होने के लिये भी किसी की आवश्यकता होनी ही चाहिये। घर्षण साधन न हो तो अग्नि अर्थात् उष्णता उत्पन्न हो नहीं सकती। उष्णता के बिना वायु अर्थात् हवा उत्पन्न नहीं हो सकती और जब हवा नहीं पृथ्वी की उत्पत्ति भी असम्भव है। इससे स्पष्ट है कि घर्षण साधन अवश्य होना ही चाहिये। गति के बिना उष्णता बिलकुल उत्पन्न नहीं हो सकती। इस गति की उत्पत्ति कहां से है, सो अंग्रेज शास्त्रकार नहीं कह सकते। यहां उनका साहस छूट जाता है और इसके विषय में उनकी मति काम नहीं देती। उनको आज तक ६६ तत्वों का पता लगा है। उनका शास्त्र आज तक बाल्यावस्था में ही है। ईथर के सम्बन्ध में उनको आज तक कुछ भी ज्ञान न था। आज तक वे यह मानते थे कि पृथ्वी के आस पास ४८ मील तक वायु घिरी हुई है और सूर्य किरण के आधार से वह नीचे आती है। इस ४८ मील के आगे क्या है इसकी उन्हें कल्पना भी न थी। पता लगते लगते उन्हें अब यह ज्ञान हुआ है कि हवा व्यतिरिक्त ईथर के समान कुछ पदार्थ है। परन्तु ईथर विषयक ज्ञान हम लोगों को बहुत प्राचीन काल से था। "ईथर" अर्थात् "आकाश" और वैक्यूम अर्थात् शून्य। हमारे आज

कल के लोगों को संस्कृत का ज्ञान न होने के कारण सच्चा अर्थ ठीक ठीक समझ में नहीं आता पर हमारे पूर्वजों को बहुत प्राचीन काल से इस विषय का पूर्ण ज्ञान था। अब आज कल के यूरोपियन पण्डित भी अवश्य ही इस विषय में कुछ समझने लगे हैं।

हमारे शास्त्रों में इस गति के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। उपनिषद् में नचिकेता ने जब अपने गुरु यमाचार्य से प्रश्न किया कि यह गति किस प्रकार उत्पन्न हुई। तब गुरुजीने उत्तर दिया कि जिस शक्ति से इस गति का प्रादुर्भाव हुआ है, उसके प्रकाशित करने में सूर्य चन्द्र, या अग्नि इत्यादि कोई भी समर्थ नहीं है, उसे आप ही आप स्वयं जानना चाहिये। हमारे शरीर के भीतर एक ऐसी शक्ति है, जिसके योग से प्राणी का सारा व्यवहार चलता है। उसी के अस्तित्व से ये सारी इन्द्रियां योग्य स्थिति में रहती हैं। उसी प्रकार इस संसार रूपी देह में भी परमात्मा की एक शक्ति विचर रही है। उसके द्वारा इस दृश्य विश्व में अखिल व्यापार सरलता से चलते रहते हैं। ऊपर कही हुई शक्ति यदि शरीर में न हो तो जिस प्रकार भीतर का सारा व्यापार बन्द हो जाय, वैसे ही परमात्मा रूपी शक्ति का यदि अभाव हो जाय तो विश्व का सारा व्यापार उलट पुलट हो जाय, और कोई भी व्यवहार योग्य रीति से न चल सके। यह जो विशिष्ट शक्ति विद्यमान है वह चर्मचक्षु से दृष्टि गोचर नहीं होती। उसे देखने के लिए दूसरे अर्थात् दिव्य चक्षु की ही आवश्यकता है। विश्व यह एक बडी भारी घड़ी है। वह अपने कार्य में कभी भूल नहीं करती तथापि उसमें चाबी देने वाले की जरूरत तो है ही। जैसे मनुष्य कृत घड़ी चाबी दिये बिना नहीं चलती और यदि चाबी न दी जाय तो बिगड़ जाती और बन्द हो जाती है अथवा अनियमितता से चलती है यही हाल इस विश्वरूपी घड़ी का है। एञ्जन चलाने के लिये ड्राईवर होना चाहिये। उसके बिना रेल गाड़ी नहीं चल सकती। इसी प्रकार इस पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह आदि सब को चलाने के लिए कोई न कोई होना ही चाहिये। मनु महाराज ने कहा है कि:—प्रशासितारं

सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।१ परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है। उपनिषद् में भी ऐसा ही कहा है—अणोरणीयान्महतो महीयान् ।२ परमात्मा से सूक्ष्म इस जगत् में कोई भी नहीं । इससे किसी को यह न समझना चाहिए कि वह राई अथवा सूई के अग्र भाग के समान है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है।

पृथ्वी से सूक्ष्म जल है। जल से सूक्ष्म हवा और हवा से सूक्ष्म आकर्षण शक्ति है । वह आकर्षण शक्ति निराकार सूक्ष्म और व्यापक है उसी प्रकार ईश्वर भी निराकार व्यापक और सूक्ष्म है । वेद में भी यही कहा है:—

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्रविश्वं भवत्येक नीडम् ।
तस्मिन्निदꣳसञ्च विचैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥
॥ य० ३२।८ ॥

परमेश्वर को सूक्ष्म शक्ति से पहचान । वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और सर्वव्यापी है । जैसे ईथर और वैक्यूम् सब जगह है, वैसे ही उसका अस्तित्व सर्वत्र है। भगवद् गीता में कहा है कि ब्रह्मानन्द सुख अतीन्द्रिय है, अवश्य हो इस ब्रह्मानन्द की प्राप्ति ज्ञान से होती है। आत्यन्तिक अतीन्द्रिय ब्रह्मानन्द सुख बुद्धि से ही जानने में आता है। जिस प्रकार तडित विद्युत् सर्वत्र है उसी प्रकार ईश्वर सवत्र प्रकाश रूप भरा हुआ है। मनु महाराज ने उस परमात्मा को "स्वप्नाधिगम्यम्" वर्णन किया है। समाधि से ही उसे जान सकते हैं। गहन विषयों का चित्त की एकाग्रता बिना आकलन (सम्पादन) नहीं हो सकता तब फिर परमात्मा जो सबसे सूक्ष्म है, चित्त की अत्यन्त शान्ति के बिना कैसे जाना जा सकता। भिन्न भिन्न चार प्रकार के लोग प्रकार चतुष्टय से ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर को जान सकते हैं। योगी लोग प्रत्यक्ष अनुभव से परमेश्वर को देखते हैं वही अच्छी तरह देख सकते हैं। तार्किक लोग अनुमान से यह मानते हैं

१-मनु० १२।१२२, २-श्वेताश्वेतर ३।२०

कि ईश्वर है। वे कहते हैं—यत्रयत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः। इस न्याय से इस जगत् का बनाने वाला कोई न कोई होना ही चाहिए। विद्वान् लोग शाब्दिक प्रमाण से ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करते हैं और अब भी स्वीकार करेंगे जिस प्रकार वैक्यूम और ईथर सर्वत्र है उसी प्रकार ईश्वर भी सर्वत्र व्यापक है। आकाश की व्याप्ति सब से विशेष है। उसी प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापक है—ऐसा औपमानिक लोग मानते हैं। जब हम हिमालय पर्वत पर बसते थे तब एक कद हमारे खाने में आई थी। उसकी मधुरता इतनी अपूर्व थी कि तुम से यदि कहा जाय तो तुम उसकी कल्पना नहीं कर सकते। मिष्टता के विषय में तुमको हमारे कहने से शाब्दिक ज्ञान हुआ परन्तु कुछ अनुभव नहीं हुआ। इसी तरह केवल शाब्दिक ज्ञान से ईश्वर का पूर्ण स्वरूप मालूम नहीं हो सकता। उपनिषद् में भी कहा है:—केवल तर्क से ईश्वर का सच्चा स्वरूप समझने में नहीं आता। इस सम्बन्ध में जब तक अहर्निश ध्यान न लगाया जाय तब तक उस विषय की पक्की खोज दुर्लभ है। आज कल के व्यवहारिक तार द्वारा टेलिग्राम के उदाहरण से तुम्हारी समझ में आवेगा कि केवल तर्क से यह विद्या नहीं जानी जा सकती। यह विद्या जानने के लिये इस विषय का सब प्रकार का ज्ञान पहले सीखना होता है। तभी सच्ची स्थिति अपनी समझ में आ सकती है। बस इसी तरह ईश्वर विषय भी केवल तर्क से जानने में नहीं आता। हमारे ऋषिवर्यों ने रात और दिन, क्या जंगल और पर्वतों की गुफा में, शीत, ताप, वृष्टि आदि दुसह, दुःख सह और कन्द मूल खाकर जो जो आविष्कार अद्यापि अन्य लोग नहीं कर पाये उन्हें कर, जो प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया है उसकी ओर हमारे नवयुवकों का थोड़ा बहुत ध्यान अवश्य जाना चाहिये। यह हमारी उनसे विनती है। उन महर्षियों के बतलाये हुए मार्ग को तुम पकड़ो इसी मार्ग से तुम्हारा और सबका उस परमात्मा के साथ मिलाप होगा। बुद्धिमान् लोगों ने कहा है कि जगत् के सब सुख ब्रह्मानन्द सुख के आगे तुच्छ हैं। मनुष्यमात्र इस

संसार के सब तुच्छ सुखों में आनन्द मानते हैं। और उसके दास बन कर रहते हैं। उन्हें यदि ब्रह्मानन्द पाने का अवसर आवे तो वे इस आनन्द को कभी न भूलें। हम रात दिन चैतन्य सागर में निमग्न रहते हैं। तथापि उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं होता। हम कोरे के कोरे ही रहते हैं। परमात्मा किसी एक जगह चुप नहीं बैठा है। वह सर्वत्रव्याप्त है। सूर्य का प्रकाश उसी को दीख पड़ता है जिसकी आंखें ठीक होती हैं।

जैसे अन्धे मनुष्य को सूर्य नहीं दीख पड़ता, उसी प्रकार सर्वव्यापक परब्रह्म हमारे समान ज्ञानान्धों को नहीं दीख पड़ता। परब्रह्म जानने वाले को जिस ब्रह्मानन्द का लाभ होता है उसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। परब्रह्म को जानने के लिये वेद में सबसे उत्तम मार्ग दर्शाया गया है। उसमें परमेश्वर की उपासना एक मार्ग है। चित्त स्थिर करने के लिये उपासना करनी पड़ती है। दूसरा मार्ग ज्ञान का है। अज्ञान को दूर करने के लिये वेद में ज्ञान की आवश्यकता बतलाई गई है। इस मार्ग से पहले वेद में एक मार्ग कर्म काण्ड का दिखलाया गया है। श्मशान वैराग्य का अनुभव यद्यपि प्रत्येक मनुष्य को होता है तथापि खेद की बात है कि मनुष्य दुष्कृत्य करने से पराङ्मुख नहीं होता। जिसका मन ऐसा है उसको उस पाप से परावृत्त करने के लिये और धर्माचरण में चलाकर शुद्ध करने के लिये वेद में कर्मकाण्ड का विधान किया गया है। पाप से परावृत होकर जब मन शुद्ध हो जाता है तब उसे स्थिर करने के लिये आगे उपासना का मार्ग बतलाया गया है। मन अति चंचल है। क्षण में वह यहां से कलकत्ता पहुँचता है और क्षण में वह सारी पृथ्वी पर भ्रमण करता है। प्रत्येक मनुष्य यही इच्छा रखता है कि हम बड़े भारी सम्राट् हो जायें। तात्पर्य यह कि तृष्णा प्रतिदिन तरुण होती जाती है कभी शान्त नहीं होती। बस मन की चंचलता दूर करने के लिये उपासना का साधन वेद में बतलाया है। कर्ममार्ग से शुद्ध हुआ मन उपासना से जब स्थिर हो जाता है तब उसके बाद ज्ञानार्थ ज्ञान मार्ग बतलाता है। इन मार्गों से जाने वालों को पर-

मात्मा की प्राप्ति अवश्य होती है और उसी से ब्रह्मानन्द का अपूर्व सुख प्राप्त होता है। आज का हमारा विषय "उपासना" है। उपासना का अर्थ होता है "समीप स्थित होना"। यह चंचल मन जब एक पल भर भी एक जगह स्थिर नहीं रह सकता तब इसको परब्रह्म का स्वरूप कैसे समझ पड़े? पतंजलि ऋषि ने कहा है कि—**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। १। २॥** चित्तवृत्ति का स्थिर करना योग है। हाल में जो बहुत से "योगी" दृष्टि पड़ते हैं उन्हें योगी न समझना चाहिये। वे ठग योगी हैं। हमारे ऋषिगण बड़े परमार्थी थे। वे हमारे लिये अनेक श्रम सहकर परमात्मा की पहचान का मार्ग बतला गये हैं। उन्होंने जो यह श्रम किया है उसमें उनकी स्वार्थ बुद्धि कुछ भी दिखाई नहीं देती। सिर्फ परोपकार के लिये निरपेक्ष बुद्धि से उन्होंने इतना असह्य कष्ट सहकर हमें सुमार्ग दिखाया है। इसके लिये हमें उनका कितना उपकार मानना चाहिये? हमें उनका कितना आभारी होना चाहिये? और उस मार्ग का अवलम्बन करके यदि हम न चलें तो हमारे समान कृतघ्न और कौन होगा?

महामुनि पतंजलि ऋषि ने योग शास्त्र में कहा है:—**यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि। यो० २।२९** अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योग के अष्टाङ्ग हैं। इनमें से यम पांच प्रकार का है—हिंसा न करना, चोरी न करना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य व्रत पालना, अपरिग्रह अर्थात् अन्याय से दूसरे की वस्तु न लेना। नियम भी पांच प्रकार का है—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। ईश्वर प्रणिधान का मतलब यह है कि यह सारा वैभव उसी का है हमारा कुछ नहीं। सबका स्वामी परमेश्वर ही है। प्रकृति भी उसी की है, यह शरीर भी अपना नहीं सिर्फ यह थोड़े दिन के लिये हमें मिला है, हमें जो कुछ मिला है सब इसी लिये कि उसका योग्य उपयोग किया जाय। दूसरे की बहन, बेटी को अपने समान जानना। उसके विषय में पाप बुद्धि से न देखना। इसी प्रकार जो धन हमको मिला है वह व्यभिचार और दुर्व्यसन वासनाओं को

तृप्त करने के लिये नहीं मिला है किन्तु वह सदुपयोग करने के लिये ही मिला है। ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये। हम तो इस धन के सिर्फ रक्षक हैं। सारे वैभव को ऐसा ही समझना चाहिये। इसी का नाम ईश्वर प्रणिधान है।

यम नियम के बाद योग का तीसरा अंग आसन और चौथा अंग प्राणायाम है। प्राणायाम का मतलब, श्वास प्रश्वासगति का विच्छेद। प्राणायाम के विषय में बहुत लोग योग्य जानकारी नहीं रखते। अनेक लोग हाथ पर हाथ ठोककर नाक पकड़कर बैठ जाते हैं। इसे प्राणायाम नहीं कहते। हिन्दुओं के धर्म में "गतानुगतिकत्व" के अनुसार चलने वाले लोग बहुत हैं। असली बात तो अलग ही रह जाती है और उसकी जगह कृत्रिम और मिथ्या आचार आधमकता है। एक बार की बात है कि एक वैष्णव का गंगादास नामक एक शिष्य था, उसके गुरु ने उपदेश दिया था कि "एक बार जिस वस्तु का अपने हाथ में पकड़ना उसे प्राण जाने पर भी नहीं छोड़ना।" कर्म-धर्म संयोग से एक दिन वर्षा ऋतु में पैर फिसलने से वह कीचड़ में गिर पड़ा, दुर्भाग्यवश वहां आगे एक गधा खड़ा था उसकी पूंछ इनके हाथ में पड़ गई। गंगादास जी गुरुवचन के पक्के थे, इससे इन्होंने पूंछ नहीं छोड़ी? गधे ने बहुत सी लातें मारी, पर गुरुवचन भंग कैसे हो. बस यही हाल हमारे आर्य्य देश के लोगों का हो गया है। सारासार विचार करना तो ये लोग कभी जानते ही नहीं। सन्ध्या तीन प्रकार की है वैदिक, साम्प्रदायिक और तान्त्रिक इनमें नाक, कान पकड़ने की बात किसी में नहीं पाई जाती। प्राणायाम करके योगी होने के बदले लोग रोगी होने का ही लाभ उठाते हैं। योग्य रीति से प्राणायाम करने से शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का लाभ होता है। पांचवां अंग प्रत्याहार है।

इसका अर्थ यह है कि मन व इन्द्रियों को बिषयों से हटाना। छठा अंग धारणा है। अर्थात् मन की एकाग्रता। सातवां ध्यान, जिस वस्तु में मन लग गया हो उसे छोड़ दूसरी तरफ न जाने देना।

मन जब स्थिर हो जाता है, तब वह परमेश्वर के रूप में तदाकार हो सकता है। ध्यानके विषय में महामुनि कपिलने अपने सांख्यशास्त्र में कहा कि:—**ध्यानं निर्विषयं मनः** किसी विषय में भी मन का न जाने देना ध्यान है। आठवां अंग समाधि है। **तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"** समाधिसे ही हमें ब्रह्म स्वरूप का अनन्य लाभ होता है। इससे सहज ही मालूम हो जायेगा कि समाधिकी योग्यता कितनी है। कृष्ण भगवान् ने गीता में योगी लोगों का महात्म्य इस प्रकार वर्णन किया है:—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ गीता० ॥

माया मोह में पड़ कर मनुष्य स्वकर्तव्य से पराँगमुख हो जाता है। वह मनमाना स्वच्छन्द आचरण करके पाप संचय करता है। अनेक कुकर्म करके दूसरों के लिए भी दुःख रूप बन जाता है। वह समझता है कि हम अजरामर हैं। स्वच्छन्दता से आचरण करने वाला यह भी विचार नहीं करता कि हमारे सिर के ऊपर कालचक्र घूमता है, और वह हम को किसी दिन अचानक उठा ले जायगा। उसको यदि इतना भय होता तो वे इस प्रकार प्रमाद न करते। साधारणतः यह सभी जानते हैं कि हमें मरना है, पर जिसके अन्तःकरण में यह बात समा जाती है उससे सहसा अनुचित व्यवहार नहीं होते, मृत्यु ने किसी को नहीं छोड़ा। क्या राजा क्या रंक, सभी इसके पजे में फंसते हैं। महाराज भर्तृहरि ने कहा है:—

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया,
वियोगे को भेदस्त्यजति न मनो यत्स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः,
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥ वै० १६ ॥

अर्थात् बहुत काल पर्यन्त संचित किये हुये विषय अन्त में अवश्य छुटेंगे, फिर उनके वियोग होने में क्या संशय रहा, इसलिये मनुष्य उनको पहले आप ही से क्यों न छोड़ देवें—क्योंकि यदि विषय आप

से मनुष्य को छोड़ेंगे तो मनुष्य को बड़ा परिताप होगा और यदि मनुष्य ही अपनी ओर से उन्हें छोड़ देगा तो स्वयं महासुखशान्ति को प्राप्त करेगा। तात्पर्य इतना ही है कि यह भ्रम पटल दूर करके सन्मार्गवर्ती होने के लिये मनुष्यमात्र को योगज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। योगज्ञान से उसका आचरण शुद्ध होता है और इह लोक परलोक में सुख पाता है। इसलिये योग ज्ञान को इतनी महिमा गाई गई है। अन्त में सब भाईयों के प्रति हमारी इतनी ही विनती है कि मनुष्य जन्म सार्थक करने के लिये वेदाज्ञानुसार चलकर सब कुकर्मों का परित्याग करना चाहिये। शुभ कर्मों में निष्ठा रख कर शुद्धभाव से ईश्वर की भक्ति और उपासना करते हुये लोक परलोक सफल करने से ही हमारा, हमारे देश का और हमारी सन्तति का कल्याण होगा। इत्याशास्महे।

हमारे वैदिक धर्म पर पुराणों का परिणाम

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषाजिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ यजु० २२-२२ ॥

प्राचीन समय में संसार की उत्पत्ति से महाभारत के काल तक (जिसको पांच हजार वर्ष हुए) हमारे भारतवष में एक मात्र वैदिक धर्म का साम्राज्य था, भारतोय युद्धोत्तर पौराणिक मत उत्पन्न हुआ। हमारे वैदिक धर्म को इस मत ने असाधारण हानि की। आजकल जो हमारा धर्म है वह सत्य वैदिक-धर्म के प्रतिकूल पौराणिक धर्म हैं, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक (Social, Religious, Moral & Spiritual) विषयों पर वैदिक धर्मको हटाकर

पौराणिक धर्म ने अपना अधिकार जमाया है। वेदों में लिखा है कि ईश्वर निराकार, निर्विकार, अजन्मा शुद्ध पवित्र और सृष्टिकर्ता है।

१ सपर्यगात शुक्रमकायम् यजु० ॥ ४०।८ ॥

२ द्यावा भूमी जनयन् देव एक ॥ यजु० १७ । १९ ॥

३ न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥ यजु० ३२।३ ॥

लेकिन पुराणों ने वेद प्रतिपादित एक ईश्वर की जगह शिव, विष्णु, सूर्य, गणपति, शक्ति आदि अनेक ईश्वर की कल्पना की है। और यह कल्पना भारतवर्षीय लोगों के अन्तः करणों में दृढ़ मूल हो गई है।

पुराणों में देवताओं की आपस में निन्दा भी की हैं। जैसे शिव-पुराण में विष्णु की और विष्णुपुराण में शिव की। श्रीमद्भागवत का ही उदाहरण लीजिये "भवव्रतधरा येच येच तान् समनुव्रताः। पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपंथिनः ॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थि धारिणः। विशन्तु शिव दीक्षायां यत्रदेवं सुरासवम्।" भागवतस्कन्ध ४ अ० २ श्लोक इसमें शिव की और शिवभक्तों को यहां तक निन्दा की है कि, जो पुरुष शिवभक्ति करेगा वह पाखंडी और सच्छास्त्रों का विरोध करने वाला होगा।

इसी तरह पद्म पुराण में लिखा है:—

"विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते। शिवद्रोहात् न संदेही नरकं याति दारुणम्। तस्मात् च विष्णु नामापि न वक्तव्यं कदाचन ॥" पद्मपुराण, पाताल खण्ड—

विष्णु का दर्शन करने से शिवद्रोह होता है और शिवद्रोह करने वाला पुरुष दारुण नरक में जाता है, इसलिये विष्णु के नाम का उच्चारण भी कभी नहीं करना चाहिये इसी तरह सारे पुराण एक दूसरों से विरोध करते हैं। श्रीमद्भागवत और विष्णु पुराण में लिखा है कि शिव, ब्रह्मा, देवी आदि देवताओं को पैदा करने वाला विष्णु है, वही सब देवताओं का स्वामी है।

देवी भागवत में लिखा है कि शिव और विष्णु इन दोनों को देवी ने पैदा किया है। और शिव पुराण में है कि ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं का उत्पन्न करने वाला शिव है। और विष्णु आदि देव उसके सेवक है। इस तरह आपस में द्वेषमूलक कलह है।

यजुर्वेद अ० २६ मं० २ में यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्य:। ब्रह्म राजन्याभ्याम् शूद्राय चार्याय च।" ईश्वर ने ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सारे लोगों को वेदाध्ययन का अधिकार दिया है उसी तरह ऐतरेय ब्राह्मण पंजिका ८ अध्याय १ शौद्रो वर्ण एकविंश: इस श्रुति से शूद्र को २१ यज्ञ का अधिकार दिया है। उसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण कांड १ प्रपाठ १ ब्राह्मण ४ कंडिका १२ में, आपस्तंब श्रौतसूत्र प्र० १ कं० १९ में, गोभिलीयसूत्र प्र० ४ कं० १० की टीका में और आपस्तंब प्र० ९ कं १४ तथा साँख्यायन श्रौतसूत्र अ० १४ तथा पूर्व मीमांसा अ० ६ पाद १ सूत्र ४। ५। ५.१ में शूद्र को वेदाध्ययन का अधिकार दिया है। उसी प्रकार

"यथामति यथापाठं तथा विद्या फलिष्यति।
सर्वस्तरति दुर्गाणि सर्वोभद्राणि पश्यतु ॥
श्रावयेच्चतुरोवर्णान्कृत्वाब्राह्मणमग्रत: ।
वेदस्याध्ययनमिदं तच्च कार्यं महत्स्मृतम् ॥

महाभारत शान्तिपर्व अ० ३२८ श्लोक ४८-४९

इन श्लोकों में भी श्री व्यास जी ने अपने शिष्यों को चारों वर्णों को वेद सिखाने का उपदेश किया है। इसी प्रकार महाभारत वनपर्व अ० १३४ श्लोक ११। "चत्वारो वर्णायज्ञमिमं वहन्ति ;। इसके टीका में नीलकंठने यज्ञं ज्ञानयज्ञे शूद्रस्यात्र्यस्त्यधिकार:। शूद्र को ज्ञानयज्ञ का अधिकार दिया है। उसी प्रकार शुक्रनीति अ० ४ श्लोक २ में शूद्र को ब्रह्मचर्य धारण करने को अधिकार दिया है। उसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्र में "शूद्रणामदुष्टकारिणामुपनयनम्" पारस्करगृह्य कांड २ प्र० ६ में शूद्र को मोंजीबन्धन (यज्ञोपवीत) बतलाया है।

उसी प्रकार "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" ❀ अथर्व० ११।५।१८।। तथा ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १७९ की प्रचारक स्त्री लोपामुद्रा हो गई है।

इसी तरह ऋ० मं० ८ सूक्त ९१ की प्रचारक अपाला नाम्नी कन्या हुई। बृहदारण्यक उपनिषत् अ० ६ में मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी हुई। अध्याय ५ ब्राह्मण ६ में गार्गी बड़ी ब्रह्मवादिनी बताई गई है। तथा शतपथ ब्राह्मण, आश्वलायन गृह्य सूत्र, कात्यायन श्रौत सूत्र, गोभिलीय गृह्य सूत्र, पारस्कर गृह्य सूत्र, पराशर माधव, कात्यायन श्रौत सूत्र, सांख्यायन श्रौत सूत्र, आपस्तम्बीय श्रौत सूत्र, पूर्व मीमांसा, पतञ्जलि महाभाष्य, महाभारत शांति प० अ० ३२१ आदि ग्रन्थों में स्त्रियों को वेद विद्या सीखने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। परन्तु इस वैदिक मर्यादा को छोड़कर श्रीमद्भागवत ग्रंथ ने "स्त्रीशूद्रद्विजबधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा" याने स्त्री, शूद्र, वर्णसंकर, इनको वेद श्रवण का अधिकार नहीं है। पुराण ग्रंथों में स्त्री शूद्रादिकों का वेदाध्ययन का अधिकार हरण कर लिया है। इतना ही नहीं, साम्प्रदायिक काल में याने शंकराचार्य, रामानुजाचार्य के समय में शूद्रादिकों पर इतना अन्याय हुआ है "श्रवणे त्रपुजतुभ्यां श्रोत्र परिपूरणं, उच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे हृद-विदारणमित्यादि" वेदान्त सूत्र अ० १ पाद ३ सूत्र ३८ जो शूद्र वेद श्रवण करे तो उसके कान में सीसा और लाख भरनी चाहिये, वेदोच्चारण करे तो जिह्वाच्छेद की जावे और वेद धारण करे तो हृदय विदारण किया जावे। इस प्रकार शूद्रों पर अन्याय हुआ है। इस पौराणिक शिक्षा का हमारे समाज पर ऐसा परिणाम हुआ कि अनेक जातियां हो गईं। वैदिक काल में हमारे समाज में चार वर्ण और चार ही आश्रम थे। और

❀ ब्रह्मचर्य धारण करके कन्या जवान पति को प्राप्त करे! इसी तरह गोभिलीय गृहसूत्र में "प्रावृतां यज्ञोपवीतिनां अभ्युदानयन् जपेत्। सामोददतूंग धर्वायेति" गोभि० गृ० प्र० २ कं० १ सू० १९ इस में कन्या के मौंजी बन्धन की आज्ञा स्पष्ट तरह से की गई है।

इन चारों वर्णों में आपस में रोटी बेटी व्यवहार होता था। बेटी व्यवहार के विषय में मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १३ तथा और बहुत जगह लिखा है कि ब्राह्मण को चारों वर्णों की कन्याओं से विवाह करने का अधिकार है, ब्राह्मण की कन्या भी उस समय दूसरे वर्णों के पुरुष से विवाह कर सकती थी इस विषय में देवयानी का उदाहरण प्रसिद्ध है। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में लिखा है कि—

"विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।"
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समाधेयानि सर्वतः॥

मनुस्मृति अ० २ श्लो० २४

इनमें सारे वर्णों की कन्याओं से विवाह करने की मनु जी की आज्ञा है ऐसे उदाहरण महाभारत और रामायण में बहुत से दिखाई देते हैं। मनु जी ने भी नवम अध्याय में लिखा हैं कि—

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताधमयोनिजा।
शारंगी मंदपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम्॥

एताश्चान्यश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः॥

अध्याय ९ श्लोक ३४।

अधम योनि में उत्पन्न हुई अक्षमाला का वसिष्ठ से विवाह हुआ और शारंगी का मंदपाल से संयोग होने के कारण वह पूज्य हुई। ये दो और दूसरी भी बहुत सी हीन जाति में पैदा हुई महिलायें पति के असामान्य पवित्र गुणों के कारण पूज्य हुई और उसका असाधारण उत्कर्ष हुआ।

प्राचीन समय में चारों वर्णों में आपस में विवाह होते थे और उन में परस्पर भोजन व्यवहार भी प्रचलित था। अथर्ववेद कां० ९ और ११ में लिखा है कि अतिथि जहां २ जाय वहां २ वह सर्व साधारण लोगों के हाथ का अन्न ग्रहण करे। इसी तरह तैत्तरीय

ब्राह्मण में लिखा है कि "सर्वासु प्रजासु अन्नमत्ति सः सर्वादिश अभिजयति" अष्टक २ अध्याय ३ अनुवाक ६ ! सारी प्रजाओं का अन्न जो मनुष्य खाता है वह सारी दिशाओं में जय प्राप्त करता है। आपस्तम्बीय धर्म सूत्रों में लिखा है—"आर्याधिष्ठाता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः" प्रपाठ २ पटल २ खंड २ सूत्र ४।

भोज्य पदार्थों के स्वामी आर्य और उन्हें तैयार करने वाले शूद्र होने चाहिये। इसी तरह मनुस्मृति अध्याय १० श्लोक १९ "जीवेत्कारुककर्मभिः" पौरोगव का काम करके भी शूद्र अपनी उपजीविका कर सकता है। महाभारत में लिखा है कि—

"शतं दासो सहस्राणां यस्यं नित्यं महान से ।
पात्री हस्तं दिवारात्रमतिथीन्भोजयत्युत ।"

॥ विराटपर्व अध्याय १८ श्लोक १७ ॥

राजा युधिष्ठिर के भोजन गृह में सहस्रों दासियां हाथों में पात्र लेकर दिन रात अतिथियों को जिमाया करतीं थीं। इसी तरह महाभारत वनपर्व अध्याय २० श्लोक १८ में लिखा है कि कौशिक ऋषि का धर्म व्याध ने पाद्य आचमनादि से सत्कार किया। और द्रौपदी रसोई बनाकर अतिथि ब्राह्मण को जिमाती थी। उसने दुर्वासा ऋषि को भी और ऋषियों के साथ भोजन दिया इसी तरह बाल्मीकि रामायण में भी लिखा है कि—

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादद्यथाविधि ।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्म संस्थिताम् ॥

श्लोक० ७।

राघवः प्राह विज्ञाने तामनित्यवहिष्कृताम्। अरण्यकांड ७४ रामचन्द्र जी ने शबरी के हाथ का जल प्राशन किया। मातंगादि ऋषि भी इस शबरी के हाथ का अन्न ग्रहण करते थे। (तद्दत्तमाहारादि अंगीकृत्येति—रामाश्रमी टीका) पूर्वकाल में खाने पीने में कोई भी गड़बड़ न थी। परन्तु अब तो ब्राह्मण ब्राह्मण के हाथ का भी नहीं खाते ऐसी पंचायत आ पड़ी है। काश्मीरी ब्राह्मण तो मुसलमान

के सकरे चूल्हे पर अन्न पकाकर खाते हैं तद्वत् उर्ण वस्त्र में लपेटी हुई रोटी खाने में भी शंका नहीं करते और उसी के बर्तन से पानी पी लेते हैं, मुसलमान की बनाई हुई पनीर खाते हैं। उसी प्रकार पंजाब में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जातियां कहार का पकाया हुआ अन्न खाते हैं। वायव्य प्रान्त में गौड़ ब्राह्मण बाजार में कंदोई की बनाई पूरी खाते हैं। और वह कंदोई कोई भी जाति का हो वे उसकी परवा नहीं करते। कनोजिया ब्राह्मण भी कहार की बेली हुई रोटी तवा पर भून कर खाते हैं। और आपस में एक दूसरे के हाथ का अन्न सम्बन्ध हुए बिना नहीं खाते।

मैथिल लोक वैश्यादिकों के हाथ का पकाया हुवा भात नहीं खाते; परन्तु रोटी खाते हैं। बंगाली लोक प्रायः सब के हाथ का अन्न खाते हैं। उत्कल ब्राह्मणों की ऐसी ही चाल है। जगन्नाथ जी में तो हर-एक हरएक के हाथ का खाता है। गौड़ ब्राह्मणों को छोड़ ये सब ब्राह्मण मांस भक्षण करते हैं, (काश्मीरी, पंजाबी, सारस्वत, कन्नोजिया मैथिल, बंगाली उत्कल ब्राह्मण मांस खाते हैं। इन जातियों में मांसाहार का निषेध नहीं मानते। इन जातियों में सोला आदि का विचार नहीं है। राजपूताने के ब्राह्मणों में भी सोला आदि का विचार नहीं है। और खाने पीने में प्रतिबन्ध नहीं हैं। राजपूताने में राजा महाराजा, सब क्षत्रिय राजा, नापित कुंभार वगैरह जातियों के हाथ का अन्न खाते हैं, और मसकका पानी पीते हैं और मद्यमांसादि सेवन करते है। गुजराती ब्राह्मण और महाराष्ट्र ब्राह्मण इनमें सोला पहरने की प्रथा है। परन्तु गुजराती ब्राह्मण चौका के बाहर लाया हुआ अन्न नहीं खाते यह प्रथा महाराष्ट्र ब्राह्मणों में नहीं है। ऐसा है तो भी गुजराती ब्राह्मणों में ज्ञाति भोजन के समय सड़क पर भोजन करने में निषेध नहीं है। तद्वत् महाराष्ट्र ब्राह्मण विद्यार्थी बाजार से पकाये हुये पदार्थ लेकर खाते है। परन्तु मद्रासी ब्राह्मणों में दूसरे का देखा हुवा अन्न भीं अशुद्ध मानने में आता है। "दृष्टि-दोषेण दुष्यति" खाने पीने की व्यवस्था धर्म को लेकर नहीं है वरन इसका कुछ पता भी नहीं लगता।

वेदों में तो अमुक के हाथ का खाना अमुक के हाथ का न खाना इस विषय का उल्लेख हमारे देखने में नहीं आया; बल्कि सबके हाथ का खाना ऐसा स्पष्ट उल्लेख है जैसा मैंने पहले कहा है। यह विभिन्नता पौराणिक काल में प्रचलित हुई। और साम्प्रदायिक लोगों ने इस प्रथा को कमाल दर्जे पर पहुँचाया। वैष्णव लोग तो इन्धन को भी धोते हैं परन्तु बाजार से लाया हुआ मिष्ट शर्करा इत्यादि पदार्थ वैसे ही उपयोग में लाते हैं। वैष्णव लोगों ने इस प्रपच को बढ़ा कर इतनी फूट आपस में पैदा की है कि यदि स्त्री का पति रामानुज सम्प्रदायी होवे और स्त्री वल्लभ साम्प्रदायी हो तो स्त्री पुरुषों में भी खाने पीने का व्यवहार नहीं होता। इन पौराणिक मतों ने हमारा वैदिक धर्म छिन्न भिन्न कर दिया है। पूर्वकाल में हमारे देशमें युवावस्था में विवाह होते थे, परन्तु अब वह व्यवस्था पौराणिक शिक्षाओं से बदल गई है। पूर्वकाल में ऋषि कन्यायें जन्म भर अविवाहित रहती थी। शांडिल्य ऋषि की कन्या घृतव्रता, भरद्वाज की कन्या श्रुतवती, देखो भा० शल्य गदापर्व अ० ५४ श्लोक ८ और उसी पर्व में अध्याय ३९।

इसी प्रकार महाभारत शांति पर्व अ० ३२१ सुलभा राज कन्या। बृहदारण्यक में गार्गी, वडवा प्रभृति आजन्म ब्रह्मचारिणी रहीं। भारत आदि पर्व अ० १२ कुन्ती, वनपर्व अ० ५३ दमयन्ती, आदिपर्व अ० १७१ तपती कन्या, अ० ७६ देवयानी। इसी प्रकार वृद्ध कन्या इत्यादि स्त्रियों ने पूर्ण युवावस्था में आकर विवाह किये। परन्तु पौराणिक शिक्षाओं से तो एक एक दिन के लड़के लड़कियों के विवाह होने लगे और ऐसा न किया तो पाप मानने लगे। ऐसी अवस्था प्राप्त होने से हमारी सब प्रजा नष्ट प्रायः हो गई है। वैदिक सिद्धान्तानुसार वर्णव्यवस्था गुणकर्म स्वभावानुसार मानी गई है। ऋ० मं० १० सूक्त १०७ में ब्राह्मण क्षत्रियों के लक्षण गुणकर्म स्वभाव से ही किये गये हैं। और यह व्यवस्था सृष्टि के आरम्भ से महाभारत के समय तक प्रचार में रही देखो, ऋ० ऐतरेय

ब्राह्मण पंचिका २ अध्याय ३ में कवष ऐलूष नाम का शूद्र था वह ब्राह्मण हो गया। उसी प्रकार से महाभारत में (कक्षीवान्) नाम का शूद्र था वह भी ब्राह्मण हो गया। देखो महाभारत शान्ति पर्व अध्याय २९७।

देखो ऋ० मंडल १ सूक्त ११६-१२६ इन सूक्तों का ऋषि कक्षीवान् शूद्र था। सिंधुद्वीप, देवापि, विश्वामित्र, वीतिहव्य ये सब क्षत्रिय जाति से ब्राह्मण हो गये हैं देखो महाभारत शल्य गदापर्व अ० ४० श्लोक १० महाभारत में इस तरह के अनेक उदाहरण हैं। इससे सिद्ध होता है कि गुणकर्म स्वभाव से ही वर्ण-व्यवस्था है और इसके लिए बहुत प्रमाण हैं। परन्तु पवित्र वेदाज्ञा के विरुद्ध सांप्रदायिक रूढ़ि ने जन्म से वर्णव्यवस्था मानकर जातिभेद इतने पैदा किए कि रोटी बेटी व्यवहार भी संकुचित हो गये।

यह व्याख्यान बहुत विस्तृत था परन्तु कई कारणों से अब वह पूरा नहीं मिला कहीं खो गया इस लिए पाठक इतने पर सन्तोष करें॥

॥ इति शम् ॥

—❀❀—

क्षत्रिय धर्म

[क्षत्रिय जाति के नेताओं की प्रार्थना से कावस जी पटेल होल रोड के पास क्षत्रिय पंचवाड़ी में रा० सा० दलपतराव प्राण जीवन खखार जे० पी० को सभा की ओर से प्रधान नियुक्त करके ता० ४ अगस्त १९०२ के दिन व्याख्यान करवाया था। श्रोताओं की इतनी भीड़ थी कि खड़े रहने के लिये जगह न थी।]

स्वामी जी ने व्याख्यान का प्रारम्भ करके कहा कि धर्म का उपदेश करने का काम ब्राह्मण का है परन्तु धर्म का रक्षण और व्यवस्था करने का काम क्षत्रियों का है ऐसा मनु आदि स्मृतिकारों ने लिखा है। जब क्षत्री अपना धर्म त्याग करते हैं तब धर्म का नाश

होता है। क्षत्रिय राजाओं की प्रसिद्धि महाभारत, रामायण इत्यादि में दिखलाये अनुसार इस देश में ही नहीं परन्तु सारी पृथ्वी में फैली थी। कोई भी पदार्थ कैसो ही उत्तम दशा को क्यों न प्राप्त हुआ हो अवश्य एक दिन अधम दशा को प्राप्त होता है उसका मरण निश्चय होता है यह कुदरत का कानून है। उसी तरह से जो क्षत्रिय सारे भूमंडल में राजा थे वे आज अपना धर्म भूल गये हैं और अधम अवस्था में पडे हैं। उनमें अनेक विभाग हो गये हैं। उनकी जाति की संख्या गिनी जांय तो एक दो हजार से कम नहीं होगी इससे क्षत्रियों के गौरव और अभिमान के टुकड़े हो गये हैं। क्षत्रियों में वर्तमान समय में तीन चार जातियें मुख्य हैं। राजपूताने के क्षत्रियों में राठौड़, चौहाण और सिसोदिया आदि मुख्य है। काश्मीर में डोंगरे राजा भी क्षत्रिय हैं। और यहां के भाटिया भी क्षत्री हैं। ब्रह्म क्षत्रिय नामक भी एक जाति है। खत्री शब्द क्षत्रिय शब्द का अपभ्रंश है। ब्रह्म क्षत्रिय का अर्थ क्या? ब्रह्म के संस्कृत शब्दार्थ में ५-६ अर्थ मिलते हैं जैसे ईश्वर, वेद, तत्व, ब्रह्मचर्य, ब्राह्मण इत्यादि। अब ब्रह्म क्षत्रिय का अर्थ क्या करना! जो क्षत्रिय ब्रह्म का अभ्यास करते हैं, ब्राह्मणों की रक्षा करते हैं, जो ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करते हैं, ब्रह्मचर्य पालने वाले हैं वा तत्व का जो संशोधन करते हैं इनमें से किसको ब्रह्म क्षत्रिय कहना! भारत के युद्ध के पश्चात् ज्ञान कम हो गया, और उनका राज्य ऐश्वर्य आदि न रहने पर भी कुछ क्षत्रियों ने वैदिक धर्म पालन करने की प्रतिज्ञा ली उससे उनका नाम ब्रह्मक्षित्रय पड़ा।

गीता में क्षत्रियों के धर्म के सम्बन्ध में कहा है कि शूरवीरता तेजस्वी, कान्ति, धैर्य, चतुराई युद्ध में स्थिरता, दान और ईश्वर भाव होने चाहिये।*

वर्तमान समय में ब्रिटिश सरकार ने ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा है कि किसी को हाथ हिलाने की जरूरत नहीं है। परन्तु मान लिया जाय कि रशिया या जर्मनी जैसा महान् राज्य हमला करे तो

* गीता० १८। ४३॥

मुझे विश्वास है कि यदि अभी आपके पास शस्त्र नहीं हैं तो भी ब्रिटिश सरकार की सहायता करने में आप पीछे हटें ऐसा नहीं है।

दान देना क्षत्रियों का कर्म है। गीता में लिखा है कि दान उपकारी पुरुषों को ही देना चाहिये। अन्य अयोग्य को न देना चाहिये। काशी में पण्डों को, सैंकड़ों रुपये दान में मिलते हैं उससे वे अनेक अनर्थ करते हैं। इस बम्बई में भी जिसको बिना परिश्रम धन मिलता है वे कैसा अनर्थ करते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है, जिसको परमात्मा ने आंखें दी है वे सब जानते हैं। दान पात्र को देना चाहिये। यदि कोई कुपात्र को दान देता है तो वैसा दान लेने वाले को और देने वाले को पाप लगता है ऐसा शास्त्रों में कहा है।

महाराज मनु ने मनुस्मृति में लिखा है कि क्षत्रियों को प्रजा का रक्षण करना चाहिये परन्तु आप स्वयं प्रजा हो फिर किसका रक्षण करोगे? इसलिये वर्तमान समय में तुमको अपने कुटुम्ब को प्रजा मान उसकी उत्तम तरह से पालना करनी चाहिये और वह योग्य है। भारतवर्ष अधोगति को प्राप्त हुआ है उसका यही कारण है कि जैसे ऋषि अपने शिष्यों को शिक्षण देते थे उससे न्यून भी शिक्षण आजकल दिया नहीं जाता। यदि क्षत्रिय अपने कुटुम्ब को योग्य शिक्षण दें तो वे भविष्य में तेजस्वी क्षत्रिय बनें।

मनुशास्त्र के दूसरे अध्याय में लिखा है कि ब्राह्मण के पुत्र को आठवे वर्ष में, क्षत्रिय के पुत्र को ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य के पुत्र को १२ वें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार करना। परन्तु यदि ब्राह्मण पुत्र १६ वर्ष तक क्षत्रिय को २२ वें वर्ष तक और वैश्य को २४ वें वर्ष तक यज्ञोपवीत और गायत्री मन्त्र दिया जाय तो भी वे वर्ण से पतित नहीं होते। परन्तु इस क्रम से ज्यादा आयु के हो जाने पर वे आर्य नहीं रह सकते। वे अनार्य हो जाते हैं। उनको तीन वा छः व्रत करवाने पर फिर अपने वर्ण में लिया जाता है। आप अब भी यज्ञोपवीत धारण करते हैं इससे मुझे अत्यानन्द होता है। आपको वैदिक सध्या और अग्निहोत्र भी करना चाहिये। विद्या ग्रहण करना भी क्षत्रियों का आवश्यक धर्म है। इस देश के जिन लोगों को विद्या

दी जाती है उनमें से बहुत से आपको बुद्धिमान् मिलेंगे। आजकल मुन्शियों की अपेक्षा आपको क्लर्क ज्यादा मिलेंगे। करने वालों की अपेक्षा लिखाये अनुसार लिखने वाले आपको अधिक मिलेंगे।

शास्त्रों का बुद्धिपूर्वक अर्थ करने की जरूरत है। महाराजा युधिष्ठिर कहते हैं कि विद्या द्वारा हम प्रत्येक पदार्थ को जान सकते हैं। परन्तु वर्तमान समय में विद्या पढ़ने पर भी भिन्न २ पदार्थों के यथावत् स्वरूप को हम नहीं जान सकते। मनु कहते हैं कि धर्म में संशय हो तो विद्वानों की सभा में रक्खो कि जिससे निर्णय हो। परन्तु वर्तमान समय के संस्कृत के विद्वानों की दशा देखो उनकी दशा देखो उनकी दशा एक दूसरे से विचित्र है वे दो तीन तरह के हैं। एक वर्ग तो **बाबावाक्यं प्रमाणं** अर्थात् जो लिखा गया वही मानते हैं। उसका यही अर्थ कि वह बुद्धि पूर्वक कुछ भी नहीं कर सकता। एक ब्राह्मण रात्रिको अमुक गांव में गया। उसको लोगों ने कहा कि—"बाहर मत सोना; क्योंकि वहां बाघ आता है, उसने कहा कि—'वह खा सके ये असम्भव है। व्याघ का अर्थ तो जो सूंघता हो वही है। इसलिए यदि वह आयेगा तो मुझे सूंघकर जायगा। मुझे क्यों मार डालेगा? जिस देश में ऐसे पण्डित और उपदेशक होते हैं उस देश का कल्याण कैसे हो? प्राचीन समय में ऐसी अव्यवस्था होने पर क्षत्रिय लोग अपनी सत्ता से व्यवस्था करते थे।

महाराजा भर्तृहरि जब राज्य का त्याग कर संन्यासी हो गये थे, उस समय एक स्वार्थी ने आकर प्रार्थना की कि—'मुझे आपके राज्य में नौकरी मिल जाय ऐसी सिफारिश आप राजा को करें। भर्तृहरी जी ने हंसकर उत्तर दिया कि तुमको ज्ञात है कि राजा लोग किसकी बात मानते हैं? वे केवल नट, बिनट गवैये, चुगली करने वाले और खूबसूरत स्त्रियों की ही बातों पर विश्वास करते हैं। मैं उनमें से एक भी नहीं हूँ तो फिर मेरी बात वह क्यों कर सुनेगा। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय के राजाओं की दशा इस प्रकार की थी। और वैसी ही दशा आजकल नहीं है ऐसा नहीं। क्षत्रियों की दशा जब अच्छी होगी तब सुधार होगा। इसलिए तुम को उन्नति

करनी चाहिए। तुम वेद की पाठशाला खोलो और उसके सत्य अर्थ समझने का प्रयत्न करो।

अलीगढ़ में स्वर्गीय सर सैयद अहमद ने एक कालेज की स्थापना की हैं। वे कुरान के अर्थ बुद्धिपूर्वक पढ़ाते थे। कुरान में एक ऐसा उपदेश हैं कि तुम काफिर के धन को अपना समझो। उनकी स्त्रियों को भी अपनी समझो। इसका अर्थ वर्तमान समय के मौलवी ऐसा करते थे कि मुसलमानों को छोड़कर दूसरों का धन और स्त्रियां ले लेनी चाहिएं। परन्तु सैयद अहमद ये सिखाते थे कि दूसरों के धन को अपने धन के तुल्य मानो और पवित्र मन से दूसरों की औरतों को अपनी माताएं और बहिनों के तुल्य जानो। स्वामी दयानन्द ने कुदरती नियम के और व्याकरण के अनुसार अर्थ किए हैं। उसी तरह से तुम भी पढ़ाओ। यदि तुम अपने क्षत्रिय धर्म का पालन नहीं करोगे तो फिर नाम मात्र के क्षत्रिय बनना मानो काष्ठमय और चर्ममय मृग होने के समान है। केवल संस्कृत से पेट का पोषण आज कल नहीं होता। आज कल अंग्रेजी विद्या की भी जरूरत है। मराठी में एक कहावत है कि "पहिले पोटीवा और फिर वीठोबा।" तुम केवल अंग्रेजी भाषा अपने पुत्रों को पढ़ाओगे तो इससे वे धर्म हीन होगें इसलिए उनको संस्कृत भाषा द्वारा धर्म पढ़ाओ।

महाराजा युधिष्ठिर कैसे धर्मात्मा थे महात्मा कृष्ण ने उनको झूठ बोलने को कहा, परन्तु उनकी जिह्वा खुली नहीं। प्राचीन समय के क्षत्रिय कैसे वीर और धर्मात्मा थे उनका वृतान्त महाभारत में है। उनके गुरु उनको ग्रेट नहीं गुड बनाने का प्रयत्न करते थे। आजकल "लाड़ी (पत्नी) बाड़ी (मकान) और गाड़ी के पीछे दौड़ धूप है। परन्तु वस्तुतः सुख नीति के अनुकूल चलने से और सब स्त्रियों को माता और बहिन की तरह समझने से मिलता है। यह सब बातें धर्मयुक्त शिक्षा से प्राप्त होती हैं।

जैसे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ विद्वान् को गिना जाता है उसी तरह से जिसके बाहु उत्तम मजबूत हैं वह सर्वोत्तम क्षत्रिय है ऐसा मनु जी

कहते हैं। क्षत्रियों को जितेन्द्रिय रहने की जरूरत है। व्यभिचार शराब से क्षत्रिय का बाहुबल नष्ट होके उसका तेज भी नष्ट हो जाता है। भीष्म पितामह बाणों की शय्या पर सोते थे। उनको पूछा गया कि महाराज आपको इतने बाण लगने पर दुःख क्यों नहीं होता। उन्होंने हंसते हुए उत्तर दिया कि मुझे दुःख न होने का कारण मेरा अखण्ड ब्रह्मचर्य है। इसलिए तुम को भी ब्रह्मचर्य के ऊपर ध्यान देना चाहिए। संन्यासी और वर्तमानवालों का मुख्य कर्तव्य है कि जन समाज की प्रीति—अप्रिति की परवाह न रख के उनके हित में दृष्टि रख कर भला बुरा जैसा हो वैसा करना चाहिये। परन्तु अमुक वर्तमान पत्रने मेरे अगले व्याख्यान को जो उलटा रूप दिया है, उससे ज्ञात होता है कि वर्तमान समय सत्य से दूर है। वर्तमान समय में ऐसे ब्राह्मण कम हैं, जो मरने पर भी झूठ न बोलें। आजकल आचार्यों, ब्राह्मणों ने अपनी २ दुकानें खोली हैं। जिस देश में ऐसा अन्धेर चलता है उस देश पर अनेक कष्ट आते हैं और ईश्वर भी कोप करे तो उसमें आश्चर्य ही क्या? तुम्हारी क्षत्रिय जाति की ऐसी अधोगति न हो और ईश्वर तुम को चरितारथ और मशहूर बनावे यही मेरी प्रार्थना है।

[तत्पश्चात् एक कवि ने कहा कि जैसे श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि—"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" इत्यादि उसी तरह स्वामी नित्यानन्द जी इस देश में आर्य धर्म का उत्कर्ष करने के लिये पधारे हैं। स्वामी जी की प्रशंसा में एक कविता सुनाई थी, जिसमें प्राचीन ऋषियों से स्वामी जी का मुकाबला किया था।

बाद में प्रमुख ने कहा कि स्वामी जी ने मनु आदि के प्रमाणों द्वारा क्षत्रियों के धर्म दिखलाये हैं उसी मार्ग से हमारी उन्नति होगी। स्वामी जी ने जो कहा है वह सब मनन करने योग्य है। तत् पश्चात् स्वामी जी का उपकार मान के सभा समाप्त हुई थी।]

—:❀:—

वेदों का स्वतः प्रामाण्य और अपौरुषेयत्व सम्बन्धी विचार

[ब्रह्मचारी श्री रामेश्वरानन्द जी स्थापित हिन्दू धर्म सभा की ओर से स्वामी श्री नित्यानन्द जी का वेदों के स्वतः प्रामाण्य तथा अपौरुषेयत्व सम्बन्धी विचार, इस विषय पर ता० ८ अगस्त १९०२ के दिन दिया हुआ व्याख्यान।]

ओ३म् विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो, विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ यजु० १७-१९

आज के व्याख्यान का विषय डाक्टर पोपट तथा डाक्टर सर भालचन्द्र अर्थात् डाक्टरद्वय ने आपको बतला दिया है, तदनुसार वेदों के स्वतः प्रामाण्य तथा अपौरुषेयत्व सम्बन्धी विचार यह है। इस विषय पर गत धर्म सभा में विवेचन हो चुका है उसी पर मैं अपना अभिप्राय क्रमशः दूंगा; प्रथम के सात प्रश्न एक ही प्रश्न में आ जाते हैं।

संन्यासी का फर्ज, सबको खुश रखने की मुश्किल

परन्तु इन सात प्रश्नो पर विवेचना करने के पहले मैं एक निवेदन करना चाहता हूं, और वह मेरे पहले व्याख्यानों का अभिप्राय न समझने से कितने ही लोगों की भूल के सम्बन्ध में है। मैं किसी मनुष्य, जाति, व्यक्ति, व समष्टि के साथ राग-द्वेष नहीं रखता हूँ। संन्यासी को राग-द्वेष रखना ही उचित नहीं है। मेरा अभिप्राय और सिद्धान्त न समझ कर बहुत लोगों ने मेरी बाबत असत्य बातें प्रगट की हैं। कोई भी मनुष्य प्रत्येक मनुष्य को तो खुश नहीं कर सकता, कोई न कोई तो अपने पुराने संस्कारों के कारण नाराज (अप्रसन्न) भी होते ही हैं, जो आदमी सबको प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है, उसको असत्य ही जानना। जंगल में रहने वाले महात्मा से महात्मा भी सबको प्रसन्न नहीं कर सकते हैं। कहा है कि—

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः।
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षाः मित्रोदासीन शत्रवः ॥

इसका अर्थ यह है कि जो महात्मा जंगल में जाकर तप करते हैं, जिनका समस्त संसार से कोई सम्बन्ध नहीं है, उनके सम्बन्ध में भी तीन पक्ष होते हैं। कोई उनका मित्र, कोई शत्रु, और कोई उनसे उदासीन होता है। जब बनवासी महात्माओं के भी शत्रु होते हैं; तो जो संसार में उपदेश करते हैं और खासकर लोगों में प्रचलित रूढ़ि के विरुद्ध जो कहे, तो रुढ़िवश लोग जो उससे खुश न हों तो यह स्वाभाविक ही है। इससे जो वे विरुद्ध हों तो मुझे इसकी फ़िकर नहीं है, परन्तु जो मैंने कहा ही न हो वह मेरे मुख में से निकला कहें, तो यह बलात्कार और जबरदस्ती ही कही जावेगी।

कितनी ही समझ की भूलें

संसार यात्रा के मेरे व्याख्यान में मैंने यह नहीं कहा था कि—आर्यों को मांसाहार करना चाहिये। मुझसे पूछते हैं, कि आज से आठ वर्ष हुए मैंने कावस जी इन्स्टीटयूट में अहिंसा पर, महामहोपाध्याय प्रोफेसर झलकीकर के सभापतित्व में जो व्याख्यान दिया था उसमें मैंने मांसाहार के विरुद्ध कहा था और अब क्यों बदल गया? मेरा निवेदन है कि इस विषय में मेरे विचार जो उस समय थे वे ही अब भी हैं, मैं मांसाहार वेद विरुद्ध मानता हूँ, और उसको अनुचित समझता हूँ। (तालियां) देशाटन विषयक अपने व्याख्यान में मैंने कहा था कि काश्मीर के पण्डित मांसाहारी हैं, सो इसलिये मैंने कहा था कि परदेश जाकर जो हिन्दू लोग मांसाहार करें तो इसी कारण से जो उनको जाति बाहर किया जाता है तो यह वास्तविक नहीं है; क्योंकि स्वयं हिन्दू पण्डित जो जाति के साथ व्यवहार रखते हैं और ऊंचे गिने जाते हैं वे ही मांसाहारी हैं। मैंने कुधारक और सुधारक दो शब्द कहे थे। इससे कहा जाता है कि मैंने सुधारक के विरुद्ध पक्ष को गालियां दीं परन्तु ऐसा नहीं है। सुधारक और कुधारक शब्द एक दूसरे के विरुद्ध में लिखे वे बोले जाते मैंने वर्तमानपत्रों में पढ़े हैं। यद्यपि कुधारक शब्द का वास्तविक अर्थ और ही होता है, तो भी जो वह उस आशय से बोला जाता हो तो मैं नहीं जानता। हिन्दू शब्द वेद, उपवेद रामायण, महाभारत १८ पुराण

आदि किसी ग्रन्थ में भी नहीं है, यह फारसी भाषा का शब्द है जिस का अर्थ काफिर, काला होता है, तो भी हाल में वह और ही अर्थ में बोला जाता है। इसी तरह से मैंने कुधारक शब्द का प्रयोग किया था। मैंने ढकोसले शास्त्री भी कहा था, धतींग करने वाले शास्त्रियों को उत्तर हिन्दुस्तान में ढकोसले शास्त्री कहते हैं, परन्तु इससे यहां के कितने ही शास्त्री जिनको मैं भद्र और योग्य मानता हूँ उन्होंने समझा कि यह शब्द मैंने उनके लिये कहा था जो बिल्कुल असत्य है। मैंने तो उन शास्त्रियों के लिये जो लोगों को हानि पहुंचाते हैं यह शब्द कहा था और कहा जाता है कि मैंने कहा था कि "शंकर स्वामी वर्णाश्रम नहीं मानते थे" सो मैंने ऐसा कहा ही न था; उलटा शंकर स्वामी वर्णाश्रम के इतने अभिमानी थे कि उन्होंने अपने शंकर भाष्य में लिखा है कि—जो शूद्र वर्ण का कोई मनुष्य वेद मन्त्र सुन ले तो उसके कानों में गर्म शीशा डाल दिया जाय।

शास्त्रार्थ करने की इच्छा

कहा जाता है कि मैं शास्त्रार्थ करने से हटता हूँ, मैं खुद किसी को शास्त्रार्थ करने को चैलेंज नहीं करता (तालियां), परन्तु कदाचित् कोई और ही मेरी ओर से चैलेंज दे दे तो और बात है। परन्तु जो कोई मुझे चैलेंज करे तो उसके साथ शास्त्रार्थ करने से स्वप्न में भी नहीं डरता हूँ, फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो (जोर की तालियां) मैं अब अप्रासंगिक बातें छोड़ दूंगा।

मेरा शरीर भी औरों की तरह मलमूत्र का बना है, ऐसा जान कर मैं अपनी प्रशंसा से नहीं फूलता, तथा अपनी निन्दा अप्रशंसा से बुरा नहीं मानता; वेद विरुद्ध मैं कभी कहता नहीं, बुरा कहो, भला कहो, चाहे सो कहो, सत्य कहने से मैं कभी नहीं हटता हूँ, बुरा भला कहने से मैं अपनी ड्यूटी बजाने से नहीं हटता हूँ, इतना कहकर मैं अपने विषय पर आऊंगा।

वेदों का स्वतः प्रामाण्य

वेदों का स्वतः प्रामाण्य विषयक विचार सब से पहले करना है।

जैसे सूर्य्य के देखने के लिए दीपक की जरूरत नहीं रहती, क्योंकि वह स्वतः सिद्ध स्वप्रकाशस्वरूप है, वैसे ही वेद स्वतः प्रमाण रूप है, इसलिये उसको सिद्ध करने के लिये अन्य प्रमाणों की जरूरत नहीं है। इस समय इस पर अधिक बोलने की जरूरत नहीं है। वेदों के पीछे एक एक वेद का एक २ ब्राह्मण इस प्रकार चार ब्राह्मण, ४ उपवेद, चारों वेदों के उपनिषद्, गृह्यसूत्र आदि वेदों के बाद उत्पन्न हुए (जन्मे)। ग्रन्थ अपौरुषेय हैं, या नहीं, इस बात का विचार करना रहता है, इस प्रकार वेदादि सम्बन्धी सात प्रश्न हैं, जिसको मैं एक ही व्याख्यान में पूरा करने का प्रयत्न करूंगा। हरएक प्रश्न को पूर्ण रीति से कहने जांचने के लिए दो दो घण्टे चाहिये; परन्तु समय न होने से मैं उन पर संक्षेप में बोलूंगा। यह विषय शास्त्रीय है, इसलिए सम्भव है कि कितने ही इसको न भी समझ सकें, परन्तु उनको जहां तक बनेगा मैं सरल और स्पष्ट करने का प्रयत्न करूंगा :

नास्तिक और आस्तिक

इस संसार में दो पक्ष हैं; एक आस्तिक और दूसरा नास्तिक। आस्तिक पक्ष, ईश्वर और परलोक को मानता है, परन्तु नास्तिक पक्ष उन दो में से एक को भी नहीं मानता है। आस्तिकों में भी दो विभाग हैं, एक पक्ष ईश्वर को मानता है, परन्तु ईश्वरोक्त ज्ञान नहीं मानता, परन्तु दूसरा पक्ष दोनों को मानता है। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई ये दूसरे पक्ष में हैं। यद्यपि हिन्दू वेद, मुसलमान कुरान शरीफ, और ईसाई इंजिल अथवा बाइबल को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, परन्तु उनका इस विषय में मतभेद नहीं है कि ईश्वर की ओर से ज्ञान प्रकट हुआ है।

ईश्वरीय ज्ञान न मानने वाले आस्तिक के मानने में दोष

पहले जो आस्तिक ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले नहीं उनके विषय में मैं बोलूंगा। जो ईश्वर को ही नहीं मानता वह ईश्वरीय ज्ञान तो कहां से माने? उसमें उसका दोष नहीं है, परन्तु जो ईश्वर को मानता हुआ भी ईश्वरीय ज्ञान वेद या अन्य पुस्तकों को नहीं मानता उसके

मानने में ही एक बड़ा दोष है। परमात्मा अपना माता पिता है, पिता माता का धर्म है कि—सन्तान का पालन करे, उसको योग्य शिक्षा दे और उसको सुयोग्य बनावे, इसलिये ईश्वर हमारा माता पिता हो तो उसको चाहिये कि पहले मनुष्यों को ज्ञान देवे;—जो वह ऐसा न करे तो वह -ाता पिता नहीं कहा जा सकता। जब ईश्वर सब जगत् का स्वामी है तो उसका कानून भी होना ही चाहिये। जब से ब्रिटिश सरकार का राज्य इस देश में हुआ है, तब से उसने अपने कानून भी प्रसिद्ध किये हैं उसने बतला दिया कि जो तुम (अमुक) फलाने २ दुष्कर्म करोगे तो तुमको फलानी (अमुक) सजा होगी वैसे ही जो ईश्वर सृष्टि का कोई कानून न बनावे और पीछे से किसी को कानून विरुद्ध चलने के कारण सजा करे तो यह उचित न समझा जायगा; इससे तो वह अन्यायी कहलावेगा। इसलिये आस्तिक उनको न्यायी मानते हैं, उसको ऐसा मानना ही पड़ेगा, कि वह अपनी सृष्टि रूपी सर.ार को ज्ञान रूपी कानून देवे, जब दो और दो चार मानते हैं तो ४+४=८ मानने में उनको क्या बाधा है? जो कोई ईश्वर को माता पिता माने तो उसी न्याय से उसको Revelation भी मानना ही चाहिये।

कोई पूछेगा कि 'क्या ईश्वर ने ज्ञान का पुस्तक ऊपर से भेजा? नहीं, शुरू में ईश्वर ने योग्य महात्माओं को ज्ञानी ही उत्पन्न किया परन्तु हाल में जो २ पुस्तक ईश्वरीय होने का दावा करते हैं वे बहुत सी बातों में एक दूसरे से विरुद्ध हैं तो प्रश्न होता है कि वे परमेश्वर की ओर से कैसे हो सकती हैं, हाल में जो थोड़ा धार्मिक ज्ञान अन्य मतो में है वह वेदों का ही है।

ईश्वरीय ज्ञान विरुद्ध डारविन का मत

मि० डार्विन की पुस्तक पढ़ कर कितने ही पढ़े लिखे लोग कहते हैं कि जैसे अत्यन्त छोटे आमीबा नाम के जन्तु से बन्दर हुआ है और उसमें से मनुष्य हुआ है वैसे ही ज्ञान भी धीमे २ प्रकट होकर आजकल की उन्नत दशा को पहुंच गया है। वे कहते हैं कि शुरू में मनुष्य ने वृक्षों की शाखाओं को एक दूसरी से जुटी हुई और उनमें से वर्षा

के दिनों में पानी टपकता न देखकर वे उसके नीचे खड़े रहे, और भीगने से बचे। इस पर से उन्होंने बरसात से बचने के लिए चटाई की तरह के छप्पर गूथने का ज्ञान प्राप्त किया। फिर किसी को पानी में डूबते देखकर आदि मनुष्यों को ज्ञान हुआ कि पानी में न गिरना चाहिये। इस तरह अनुभव होने से अग्नि से दूर रहना वे सीखे. परन्तु ज्ञान अपने आप नहीं मिल सकता जो लोग कहते हैं कि—'क्रम से ज्ञान बढ़ा' यदि उन्होंने इतिहास पढ़ा हो तो उनको मालूम होगा कि जंगली लोग हजारों वर्ष तक अपनी नीच दशा में पड़े रहे थे और कितना ही समय हो जाने पर भी वे अपना सुधार न कर पाये थे। जब सं० १४९२ में कोलम्बस अमेरिका में गया, तब वहां के जंगली रेड इण्डियन सभ्य होने लगे; अफ्रीका के सेमेटिक हब्शी लोगों के देश में जब तक यूरोपियन लोग न गये थे, तब तक उनको बिल्कुल ज्ञान न हुआ था। परन्तु अमेरिका और अफ्रीका जैसे दूर देशों में उदाहरण ढूंढ़ने को जाने की जरूरत नहीं है। अण्डमान के टापू जहां सबसे घोर पाप करने वालों को हमारी ब्रिटिश सरकार देश निकाले का दण्ड करके भेजती है, वहां के लोग अंग्रेजों के उस देश में जाने से पहले बिल्कुल अधम स्थिति में थे, तब तक वे कपड़े पहरना भी न समझते थे, वे सभ्य प्रजा के संसर्ग में आने से ही कपड़े पहरना सीखे, इसी प्रकार दूसरी जातियों के अनेकों दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। इसके ऊपर से हमको मानना पड़ता है कि—'नैमित्तिक ज्ञान और सत्संग बिना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है।' इसलिये मानना पड़ता है कि आरम्भ में ईश्वर ने अवश्य ज्ञान दिया।

भेड़िया रूपी मनुष्य का एक उदाहरण

एक समय मैं आगरे और अवध के संयुक्त प्रान्त के बरेली नगर में गया था। वहां एक अनाथालय में जो कि विशेषकर आर्य्य समाज की ओर से चलाया जा रहा है और उसके उत्तम प्रबन्ध के कारण सरकार से प्रत्येक अनाथ को २॥) रु. महीने के हिसाब से खर्च मिलता है, उसमें मैंने एक भेड़िया रूपी मनुष्य देखा था। ऐसा अकस्मात् हुआ कि एक गड़रिये के लड़के को एक भेड़िया जिसको संस्कृत में

वृक कहते हैं उठा ले गया 'मांसाहारीं कुतो दया ? अर्थात् मांसाहारी में दया कहां ? तो भी परमात्मा की अपरम्पार दया देखो। उस भेड़िये ने उस बच्चे को मार न डालकर उसको पाला। वह मादा भेड़िया उस बच्चे को दूध पिलाती। इस प्रकार वह बड़ा हुआ, परन्तु उसको किसी ने दो पैरों से चलना न सिखाया। इस लिये भेड़िये की तरह वह चार पैरों (दो हाथों पैरों) से चला करता था। एक समय मथुरा का कलक्टर शिकार करता करता उस तरफ जा निकला। गडरिये का बच्चा ठंड लगने से गुफा के बाहर धूप में बैठा था। मथुरा के कलक्टर ने देखा कि तुरन्त ही वह डर के मारे पेट के बल चलकर गुफा में घुस गया। कलक्टर ने जान लिया कि यह भेड़िया तो नहीं है। उसने उसको पकड़ने के लिये आदमी भेजे उसने उनको काटने के लिये प्रयत्न किया और अन्त को बड़ी मुश्किल से पकड़ा गया। इस बच्चे की उस समय दस वर्ष की उम्र थी। कलक्टर के हुक्म से वह इस अनाथालय में लाया गया था। जब मैंने उसे देखा था उस समय वह ४ वर्ष का था। पहले तो वह कच्चा ही मांस खा जाता था, परन्तु ४ वर्ष खाने के बाद वह पकाया हुआ खाने लगा था और नंगे बदन फिरना खराब समझने लगा था। पहले तो एक शब्द भी नहीं बोल सकता था, परन्तु अब वह थोड़ा २ बोल सकता है। यह दृष्टान्त क्या सिद्ध करता है ? यही कि नैमित्तिक ज्ञान न मिलने से भाषा और संसार के पदार्थों का ज्ञान नहीं मिल सकता।

डार्विन से विरुद्ध थियोरी

कोई कहेगा कि ज्ञान धीरे २ बढ़ सकता है, परन्तु हमारा मानना उससे एक तरह विरुद्ध है। बहुत से ईसाई विद्वान् भी वैसा ही मानते हैं। हम तो उनसे उलटा यों भी मानते है कि आरम्भ में मनुष्य विद्वान् हुए और फिर बिगड़ गये। नियम होता है कि पहले एक चीज अच्छी होती है, पीछे से बिगड़ जाती है, उदाहरण लो कि सूर्य्य में पहले उष्णता अधिक थी और अब दिन दिन घटती जाती है। पहले पृथ्वी में अन्न उत्पन्न करने की शक्ति अधिक थी,

पर अब उतनी नहीं रही। पहले मनुष्यों के शरीर अधिक लम्बे चौड़े थे, अब वे घट गये हैं। पृथ्वी से खोद कर निकाले हुए मनुष्यों के मस्तक मत्थे बहुत बडे मिले हैं। इस पर से अनुमान होता है कि उनमें ज्ञान बुद्धि भी विशेष होगी। डारविन मतवादी यूं कहते हैं कि उत्क्रान्ति Evolution के नियमानुसार ज्ञान किशोर अवस्था से युवावस्था में और उससे वृद्धावस्था में अधिक होता है। जितना ज्ञान ३०-३५ वर्ष में होता है उतना १९-२० वर्ष के बालक को नहीं होता; परन्तु बाल्यावस्था से युवावस्था तक ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ? यदि आप किसी मनुष्य को जंगल में रख दें तो ज्ञान कभी नहीं होगा। प्राचीन समय में सृष्टि के आरम्भ में सब मनुष्य जंगल के समान स्थानों में ही थे और यदि सब ही अज्ञानी थे ऐसा मानते हैं तो किशोरावस्था में ज्ञान कहां से आया? क्या गुरु के बिना किसी को कभी भी ज्ञान हुआ है? कालिजों में अच्छी पुस्तकों के होते हुए भी कोई किस प्रकार पढ़े? क्या एक वैद्य की सहायता के बिना दूसरा वैद्य स्वयं बन गया। इसलिये ज्ञान का स्रोत कहीं न कहीं होना ही चाहिये। मेरा ऐसा ही मन्तव्य है कि—समस्तविश्व के माता-पिता परमात्मा ने सृष्टि के आदि में अवश्य ज्ञान दिया।

प्रश्न होता है—यदि परमात्मा ने ज्ञान दिया तो किस प्रकार? क्या वह पुस्तक रूप में? क्या पुस्तक लिखकर भेजा गया? या कान में कहा गया? मैं कहता हूं ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आदि में दिया गया है, न कि बीच में। जो ज्ञान सबसे पुराना है उसी का ईश्वर प्रणीत होना सम्भव है। प्रमाण स्वरूप New testament का नया भाग बने १९०० वर्ष हुए हैं और Old testament का कोई भाग ३००० वर्ष से पहले का नहीं है वेदों के अतिरिक्त सबसे पुराना ग्रन्थ पारसियों के पैगम्बर जरदुस्त की गाथा है ऐसा पूर्व के साहित्य के अभ्यासियों का निर्णय है।

वेद व्यास जरदोश्त।

पारसियों का "दसातोर" नामक एक धार्मिक पुस्तक है। उसका अनुवाद गुजराती में हो चुका है। एक पारसी सज्जन ने इसके सम्बन्ध

में मुझे खुलासा वर्णन सुनाया इसमें कहा गया है कि अपने प्रसिद्ध वेदव्यास जिन्होंने वेदान्त फिलासफी पर एक दर्शन लिखा है, उनका शास्त्रार्थ पवित्र जरदोश्त के साथ हुआ और उसमें हार गये जिससे जरदोश्त ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया! जो कुछ भी हुआ हो, परन्तु कथा प्रसंग में उनके संवाद का वर्णन आया है, महर्षि व्यास काअसली नाम कृष्ण द्वैपायन था। व्यास का अर्थ गोल कुण्डली के बीच की लकीर Daimeter है और कृष्ण द्वैपायन वेदों को व्यास के समान आरपार कर गये थे, अर्थात् उनमें सांगोपांग निपुण थे; इससे "वेदव्यास" यह नाम उनके सन्मान के लिये दिया था।

जरदोश्त के पहले के समय का पता उनके समकालीन वेदव्यास के ग्रन्थों में मिलता है।

वेदान्त में नीचे लिखा सूत्र—

अत एव च नित्यत्वम् (१—३—२९)

अर्थात् वेद नित्य है, इस प्रकार लिखा है और वेदों का आदि कारण ब्रह्म है इस प्रकार—

शास्त्रयोनित्वात् (१—१—३)

इस सूत्र से बताया है। इस प्रकार वेद व्यास ने वेदों का ही नाम पुकारा है। और उस पुस्तक में उनसे पूर्व ऋषियों का नाम आया है। इससे सिद्ध होता है कि वेद सबसे प्राचीन पुस्तक है। (करतल ध्वनि)।

प्रो० मोक्षमूलर की सम्मति

प्रो० मोक्षमूलर जो सब धर्मों के गम्भीर अभ्यासी थे अपनी Phisycal religion नामक पुस्तक में लिखते हैं कि "कोई मुझसे पूछे कि दुनियां में सबसे प्राचीन पुस्तक कौन सा है तो मैं बिना रोक टोक के अपनी उंगली हिन्दुओं के ऋग्वेद की तरफ उठाऊंगा। (करतलध्वनि) कोई मुझसे पूछे कि—'सबसे प्राचीन धर्म कौनसा है' तो भी मेरी उंगली हिन्दू धर्म की ओर उठेगी मैं कहूँगा कि और सब धर्म इस धर्म से फैले हैं (करतलध्वनि) दूसरे

लोग हजारों कोस दूर होने पर भी सत्य और न्याय से वेद सबसे पुरानी पुस्तक है ऐसा बताते हैं परन्तु जो मनुष्य जिस देश और कुल में हो, उसके संस्कारों के वश में वह रहता ही है। एक उदाहरण दूंगा—

करवत लेने पर भी मोची का मोची

एक मनुष्य की यह समझ में आया कि काशी में करोत लेने से जीते जी शरीर के दो टुकड़े कराने से मुक्ति और मन मांगा परलोक मिलेगा। काशी की कचोरी गली में एक कुआं है, ब्रिटिश सरकार के राज्य के पहले काशी करोत का महात्म्य चला आता था। वहां मुक्ति की आशा में जाकर बहुत से भोले लोग अपनी गर्दन कटाते थे और काशी के पण्डे पीछे से उनकी मिलकियत स्वाहा कर जाते थे।

एक मोची था. वह बिचारा जूते सींते सींते घबड़ा गया, उसने सोचा कि काशी में करोत लेने से यह झगडा छूट जायगा (हंसी) वह काशी गया। करोत लेने के पहले पण्डों ने पूछा कि बोल तू अगले जन्म में राजा होवेगा? उसने सोचा कि राजाको शत्रुओं का बहुत भय रहता है और अनेक प्रकार के जंजाल और उपाधियां लगी रहती हैं, इसलिये उसने राजा होना नहीं स्वीकारा, पंडों ने पूछा—'क्या तू अगले जन्म में सेठ होगा?

मोची—उसमें भी काम धन्धे की बड़ी झंझट होती है, जिस प्रकार बम्बई के सेठों को प्रामिसरी नोटों की फिकर रहती है (हंसी) इसलिये यह भी नहीं।

पंडा—तो तू क्या बनेगा?

मुझे तो कुछ नहीं सूझता, सब कुछ सोचने पर मोची रहना ही अच्छा है, करोत दे दो कि दो मोची का मोची हूं। (भारी हंसी) बाईबिल में लिखा है कि सृष्टि को उत्पन्न हुये केवल ६ हजार वर्ष हुए, इसलिये यह मानना कि इससे प्राचीन पुस्तक नहीं हो सकती; कूप मंडूक न्याय है। एक समय भाग्यवश एक हंस कूप पर आया, जिसमें

एक मेंडक रहता था। मेंडक ने पूछा 'तू कहां से आया ?' हंस ने कहा—'मानसरोवर से।" मेंढक ने पूछा—'वह कितना बड़ा है। हंस ने कहा—बहुत बड़ा—'तो मेंडक ने छलांग मार के कहा मैंने छलांग मारी इतना बड़ा ? हंस ने कहा इससे बड़ा। अन्त में मेंढक ने सारे कूप की प्रदक्षिणा करके पूछा—'क्या इतना बड़ा ?' तब भी हंस ने मानसरोवर उससे बड़ा बताया। तब मेंढक ने कहा—इससे बड़ा हो नहीं सकता (हंसी) क्रिश्चियन मतावलम्बियों के विचार भी इसी प्रकार संकीर्ण हैं ऐसा मुझे अन्ततो गत्वा कहना पड़ता है।

स्वामी जी ने अपने भाषण में बतलाया कि मोची का धन्धा राज्य व्यापारी और ब्राह्मण से नीच होते हुए भी उसके संस्कार वैसे होने से उसने वही मांगा।

प्रोफेसर मोक्षमूलर एक सच्चे भले निष्ठावान् विद्वान् थे, परन्तु उनमें खीष्ट धर्म के संस्कार इतने दृढ़ थे कि बाइबिल के लिखे अनुसार ही वे अन्य धर्मों का अनुमान बांधते। बाइबिल में लिखा है कि सृष्टि को हुए छः हजार वर्ष हुए और उसे सत्य मान करके उन्होंने वेदों को सबसे प्राचीन कहते हुए केवल ३५०० वर्ष प्राचीन सच्चे भाव से बताया, जब वे सृष्टि को ही ६००० वर्ष से पुरानी नहीं मानते, फिर किसी पुस्तक को उससे पुरानी कैसे मानें।

मि० तिलक और वेदों की प्राचीनता

इस विषय में अनेक विद्वानों ने भिन्न २ मत दिये हैं, इनमें से एक विद्वान् मराठा ब्राह्मण जाति के हैं। जिस जाति के विरुद्ध मैं हूँ ऐसा कहा जाता है (हास्य)। उनका नाम मि० बाल गंगाधर तिलक है (करतल ध्वनि) उन्होंने "ओरायन" नामक ग्रन्थ में "वेद ३५०० वर्षों से प्राचीन है" ऐसा दर्शाया है। महाराज रामचन्द्र के समय में नक्षत्रों की जो स्थिति थी, उसका वर्णन अयोध्या काण्ड में राम के बनवास जाते समय के प्रसंग में है, उसी प्रकार महाभारत के भीष्म पर्व में युद्ध के आरम्भ में नक्षत्रों का वर्णन है, इसी प्रकार ऋग्वेद में ऋग्वेद की उत्पत्ति के समय नक्षत्रों की क्या स्थिति थी, उसके

सम्बन्ध में कुछ मन्त्र हैं। मि० तिलक ने उन मन्त्रों को उद्धृत किया है और उसमें वर्णित नक्षत्रों की स्थिति आज से छ हजार वर्ष पहले थी इस प्रकार कम से कम वेद छ हजार वर्ष पूर्व थे। जहां तक मुझे पता है मि० तिलक ने यह मन्त्र मोक्षमूलर के पास भेजा था और उन्होंने वेद की प्राचीनता मि० तिलक के कथनानुसार स्वीकार की थी।

वेदों के कम से कम छ हजार वर्ष पूर्व होने की ऐतिहासिक साक्षी

परन्तु वेद छ हजार वर्ष पूर्व थे इससे इस विषय की पूर्ति नहीं होती। आकाश में ग्रहों का चक्र घूम फिर कर कुछ हजार वर्षों पीछे उसी स्थान पर आ जाता है। सृष्टि के आरम्भ से इस प्रकार नक्षत्र एक ही स्थान पर हजारों बार आ चुके हैं। ऐतिहासिक शास्त्रों में यज्ञ करते समय अमुक नक्षत्र इस प्रकार की स्थिति में था इस प्रकार जो वर्णन आता है तो उसको सबसे अन्तिम चक्र मानना क्या आवश्यक है? सृष्टि के आरम्भ में हजारों बार नक्षत्रों की परिक्रमा हो चुकी तो क्या उससे पूर्व मानना उचित नहीं? सब से अन्त का तो मानना ही पड़ेगा।

नक्षत्रों के स्थान से वेदोत्पत्ति की तारीख

परन्तु कोई कहेंगे कि प्रथम अथवा मध्य की परिक्रमा के प्रमाण नहीं मिलते। परन्तु बीती हुई घटनाओं के सम्बन्ध में पुस्तकों को छोड़कर क्या प्रमाण दिया जा सकता है? हिन्दुस्तान में जिस प्रकार "अकबर अथवा युधिष्ठिर राजा हुए" इसका इतिहास के अतिरिक्त और क्या प्रमाण है, व्यतीत बातों को जानने के लिये अपने पास साधन इसिहास ग्रन्थ हैं।

तब अन्य बातों में तो इतिहास माने जावें, परन्तु वेद के विषय में उसे प्रमाण न मानना इसको न्याय नहीं कह सकते, इससे तो धर्म भाव की न्यूनता प्रकट होती है।

संस्कृत के शास्त्री और अंग्रेजी पढ़े हुए विद्यार्थियों में धर्मभाव

मैं स्वीकार करता हूं कि वर्तमान के संस्कृत पढ़े हुए शास्त्री धर्म विषय में भोले तो अवश्य हैं परन्तु सच्चे धर्मभाव रखते हैं। आज तक भी वे प्राचीन शिष्य सम्प्रदाय के अनुसार गुरुचरणों का स्पर्श किया करते हैं। आजकल के जैंटलमेन विद्यार्थियों में (हंसी) अपने गुरु अथवा प्रोफेसर के प्रति कोई ऊंचा मान नहीं होता। उनकी यह धारणा है कि ये जो हमें पढ़ाते हैं तो हमारे ऊपर कुछ ऐहसान नहीं करते वे अपने शिक्षक की टीका और मजाक बारम्बार करने से नहीं चूकते।

मेरा निजी अनुभव है कि एक स्कूल में हेड मास्टर का कमरा एकान्त में था उसके ऊपर लड़कों ने मोटे हरफों में Bad Master's room दुष्ट मास्टर का कमरा लिख दिया (हंसी) प्राचीन काल में इस प्रकार की धारणा थी कि विद्या पैसा लेकर नहीं परन्तु मुफ्त पढ़ाना। (करतल ध्वनि) यदि कोई पैसा लेकर विद्या पढ़ाता तो ब्राह्मणत्व से बहिष्कृत होता। और वह ब्राह्मण के आसन पर समानता से नहीं बैठ सकता। उस समय विद्या मुफ्त होने से कोई मूर्ख नहीं रहता था।

अब मैं अपने विषय पर आता हूँ, यदि धर्म भाव और न्यायदृष्टि से निर्णय किया जावे तो यह सिद्ध है कि संस्कृत ग्रन्थों व इतिहास के प्रमाणों से वेद सब से प्राचीन है।

कितने ही लोग ज्योतिष के ग्रन्थों को ३, ४ हजार वर्षों के ही पुराने बतलाते हैं परन्तु वे लाखों वर्ष पुराने हैं। इस प्रकार उनमें बताई तारीख से पता चलता है और संस्कृत के लाखों वर्षों पूर्व बने ग्रन्थों में वेदों का नाम है। यदि उन्हें प्रामाणिक नहीं मानते तो वेदों के प्रति आपकी अरुचि है इसके सिवाय और क्या कहा जाय ?

वेदों की ठीक तारीख

वेदों को प्रकट हुए आज अनुमान से १९७२९४९००५ वर्ष हुए हैं (करतल ध्वनि) तारीख के विषय में एक प्रमाण दूंगा। ऋषि ग्रन्थों

में विशेषकर ज्योतिष अवश्य होता है। प्रत्येक कृत्य के आरम्भ में और कर्मकाण्ड सम्बन्धी ग्रन्थों में संवत्सर का उपयोग अवश्य होता है प्रत्येक कृत्य के आरम्भ में ब्राह्मण द्विज लोग नीचे लिखे प्रकार से बोलते हैं।

ओ३म् अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्धे श्वेत वाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति कलयुगे कलि प्रथम चरणे इत्यादि।

अर्थ—आज श्री अर्थात् ब्रह्मा के दूसरे पहर का आधा दिवस हो गया है उसमें श्वेत वाराह कल्प में वैवस्वत मन्वन्तर है उसमें अट्ठाइसवाँ कलियुग है इसकी गणना करने से ठीक ऊपर कहे अनुसार वर्ष आते हैं।

वेदों के सम्बन्ध में सत्यवादी क्या कहते हैं ?

क्रमशः ऋषि अपने शिष्य को इस प्रकार समय बताते हैं। उस में अगर कोई गड़बड़ हो तो साक्षी की आवश्यकता पड़ती है। लेख में कोई गड़बड़ हो तो मजिस्ट्रेट सत्यवादी साक्षी से निश्चय करता है। महाराज युधिष्ठिर के समान कोई सत्यवादी साक्षी आपको नहीं मिलने की ! उनको झूठ बोलने के लिये राजनीतिज्ञ कृष्ण ने आग्रह किया, तो उन्होंने कहा—

"न मे वाक अनृतं प्राह नाऽधर्मे धीयते मतिः"

युधिष्ठिर महाराज कहते हैं—"झूठ बोलने में मेरी जिह्वा नहीं चलती, अधर्म में मेरी मति नहीं चलती।

यह बात सत्यवादी युधिष्ठिर महाराज, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र आदि पुकार पुकार के कहते हैं कि वेद लाखों बरसों से हैं क्या आप यह साक्षी झूठी गिनेंगे। यह संवत्सर रामचन्द्र, और विक्रमादित्य के समय में प्रचलित था, इसको सत्यता में शंका कैसे हो (करतल ध्वनि) यदि आप मजिस्ट्रेट की दशा में इतनी जबरदस्त साक्षी नहीं मानते तो मैं लाचार हूँ, मेरी शक्ति नहीं है कि सृष्टि का आदि काल लाकर आपके सामने रक्खू।

वेदों के स्वतः प्रामाण्य के सम्बन्ध में ऋषि और शंकर का मत

वेद स्वतः प्रमाण है, वशिष्ठ, गौतम, अंगिरा, अत्रि, भृगु आदि अति प्राचीन काल के ऋषि इतने सत्यवक्ता और महान् योगी थे कि जो उनके चरित्र पढ़कर अभ्यासी और दिग्विजयी हुए हैं उन्होंने वेदों को पौरुषेय अथवा पुरुषकृत नहीं परन्तु ईश्वरकृत कहा है। फारसी में एक कहावत है, जिसका अर्थ यह है—'कि मक्खी हलवाई की दुकान को छोड़कर अन्यत्र जाना नहीं चाहती।'

शंकर स्वामी के साहित्य रूपी मिठाई पर जर्मन विद्वान् मक्खियों की तरह घूम रहे हैं। शंकर स्वामी में असाधारण नैतिक धैर्य था। जिन शंकर स्वामी ने बौद्ध धर्म में गये हुए हिन्दुओं को पीछे वेद धर्म में मिलाया वे शंकर स्वामी कहते है कि चार वेदों का ज्ञान ईश्वर की ओर से है। वे कहते हैं कि—चार वेद सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, सब विद्यायें उसी में हैं, इससे प्रतीत होता है कि ईश्वर ही इस प्रकार मूल ज्ञान दे सकते हैं।

मनु महाराज कहते हैं—

'भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति'

मनु० अ० १२

भूत, भविष्य और वर्तमान सब वेदों से प्रसिद्ध होते हैं। सांख्य-दर्शन के कर्त्ता और Evolution फिलासफी प्रतिपादक महर्षि कपिल (जिन्हें बहुत से भूल से नास्तिक कहते हैं) कहते हैं निज शक्ति से प्रादुर्भूत होने के कारण वेद स्वतः प्रमाण हैं।

इस समय साढ़े सात बज गये थे, इसलिये स्वामी जी ने कहा कि समय हो जाने से प्राचीन ऋषियों के मत अधूरे बतला कर ही आज का व्याख्यान रोकना पड़ता है। वेद स्वतः प्रमाण किस प्रकार हैं और अन्य छः प्रश्नों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन मैं कल के व्याख्यान में करूंगा।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥



वेदशास्त्रानुसार वर कन्या के विवाह का समय

इस विषय के प्रतिपादन करने के पहले मुझे आप से दो तीन बातें कहनी हैं।

मधुपर्क क्या है ?

"यज्ञ में मांसाहार करना वेदानुकूल है वा नहीं" इस विषय पर व्याख्यान देते गत दिवस मैंने निवेदन किया था कि—वेद में पशु हिंसा करने का कुछ भी नहीं लिखा है, उस समय मैंने "मधुपर्क" शब्द का भी प्रयोग किया था। मुझे कितने ही गृहस्थ पुरुषों की ओर से विनती की गयी है कि—'इस शब्द के अर्थ का स्पष्टार्थ करना चाहिये।' प्राचीन काल में ऐसा रिवाज था कि राजा, ऋषि, विद्वान् आदि मान्य लोग जब अन्य लोगों के यहां जाते थे, तो प्रथम उनके पैर धोये जाते थे, तत्पश्चात् आचमन करके मुख्य वस्तुओं का बना हुआ पदार्थ, जिसको आजकल श्रीखण्ड भीक हते हैं, और उस समय जिसको मधुपर्क कहते थे, वह प्रसाद खाने को दिया जाता था और ऐसा भी रिवाज था कि सम्मान के तौर पर गौ भी भेंट देते थे। स्मृति में कहा है कि मधुपर्क मधु, दही, घी, पानी और मिश्री इन वस्तुओं से बनाया जाता था। इसका अर्थ कितने लोग ऐसा करते हैं कि अतिथि किसी के घर आवे तो गाय को मारकर उसके रुधिर से मधुपर्क बनाते थे परन्तु यह दुष्टों की करतूत है। वे लोग भी प्रमाण देते हैं कि "नामांसो मधुपर्को भवति" और उसका अर्थ ऐसा करते हैं कि मांस बिना मधुपर्क नहीं होता। परन्तु "न अमांसो मधुपर्को भवति" इस प्रकार जो पदच्छेद करें तो ऊपर कहा अर्थ हो सकता है। परन्तु जो "अमांसो" ऐसा पदच्छेद करें तो अर्थ होगा कि जो मांस वाला होवे वह मधुपर्क नहीं हो सकता और यह अर्थ वेदानुकूल है और यह उत्तम तथा सत्य होने पर भी ऊपर के अर्थ के बदले यही क्यों न माना जाय ? मधुपर्क का अर्थ मांस युक्त होना कूडापन्थ (वाममार्ग) के समय में चलता होगा। तुम जानते हो कि वाममार्गी लोग बहुत ही भ्रष्ट और मद्यमांस आहारी थे।

"एक सूखा चना मिले तो एक घड़ा मद्य पीऊं"

वाममार्गी लोग मद्य मांस के ऐसे शौकीन थे कि उनके तांत्रिक ग्रंथों में एक वाममार्गी ने लिखा है कि—

एकेन शुष्कचणकेन घटं पिवामि पिवामि कूपम् यद्यापवेन । इत्यादि

इसका अर्थ यह है कि जो मुझे (वाममार्गी को) एक सूखा चना मिले तो एक घड़ा भरके मदिरा पीऊं ! जो पकाया चना मिले तो कुआं भर मदिरा पीऊं !! जो रोटी का एक टुकड़ा मिले तो नदी भर मदिरा पीऊं और जो मछली मिले तो समुद्र भर मदिरा पीऊं !(हंसी) यह श्लोक कहता है कि वाममार्गी मदिरा आदि मादक द्रव्यों के कैसे उपासक थे ? कालीतन्त्र आदि में लिखा है कि जो शराब मांस व्यभिचार इत्यादि में प्रवृत्त हो वही बुद्धिमान् और उत्तम मनुष्य है । और जो अज्ञानी होते हैं वे ही मांस आदि से अलग रहते हैं ।

आर्ष ग्रन्थों में वाममार्गी श्लोकों का प्रक्षेप

वाममार्गी लोगों के ग्रन्थों के ऐसे श्लोक कालक्रम से आर्ष ग्रन्थों में भी घुस गये । हिन्दुओं की गपड़ शपड़ के कारण जो चाहता उन की पुस्तकों में प्रक्षिप्त कर देता । उदाहरण के तौर पर हाल में महाभारत में हजारों ऐसे अध्याय हैं, जिनका नाम निशान तक अनुक्रमणिका में नहीं है ! इस प्रकार महाभारत के हजारों अध्याय व्यास के बनाये हुए नहीं हैं और पीछे से उसमें डाले गये हैं, यह सिद्ध होता है । क्योंकि कहा है कि—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः ॥

पर्व १ अध्याय १ श्लोक १०१ ॥

इस श्लोक में बतलाया है कि उपाख्यान छोड़कर २४००० श्लोकों का महाभारत बनाया गया था । बालिमकी रामायण में भी कितने ही श्लोक पीछे से मिला दिये गये हैं । महाभारत के भीष्मपर्व में भगवद्गीता आई है । महाभारत में गीता के जितने श्लोक हैं, उनसे

जुदी पुस्तकाकार बिकती गीता में ४४ श्लोक अधिक हैं। गृह्यसूत्र, मनुस्मृति आदि पुस्तकों में भी इसी तरह मांस आदि के सम्बन्ध में पीछे से श्लोक मिलाये गये हैं। वेदोक्त सत्यशास्त्रों में यह बात नहीं है। इसीलिये आर्षग्रंथों में से जो प्रमाण मैं देता हूँ सो जो वेदानुकूल होते हैं वे ही प्रमाण में देता हूँ और जो वेद विरुद्ध हैं, उनको मैं अप्रमाण मानता हूँ। अपने गत व्याख्यान में जो प्रमाण मैंने दिये थे उनके सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना चाहिये।

विवाह और लग्न में भेद

अब मैं अपने विषय पर आऊंगा। 'विवाह' शब्द से जो हाल में तुम्हारे यहां 'सगाई' होती है सो न समझना। जिसको तुम गुजराती में विवाह कहते हो उसका अर्थ उत्तर हिन्दुस्तान में लग्न होता है संस्कृत में भी विवाह शब्द का अर्थ लग्न ही होता है। इसलिये मैं जहां विवाह शब्द का उपयोग करूं वहां तुमको लग्न ही समझना चाहिये। हाल में जो सगाई होती है उसकी विधि शास्त्रों में है नहीं। विवाह एक ही बार होता है। मनु महाराज कहते हैं कि "संस्कृत कन्या प्रपद्यते" अर्थात् कन्या संस्कारी बनाकर लग्न में दी जाती है।

"शास्त्रों में विवाह का समय"

विवाह का समय क्या है इसका जबाब देने से पहले हम देखेंगे कि धर्मशास्त्रों में शिरोमणि वेद इसके सम्बन्ध में क्या कहते हैं। वेदों में लड़कियों और लड़कों के विवाह बड़ी आयु में करना कहा है। वेदों के पीछे उपनिषद् ब्राह्मण और गृह्य श्रौतसूत्रों में विवाह के सम्बन्ध में क्या कहा है और पीछे वैद्यकविद्या और सृष्टिक्रम देखने से और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विवाह की उमर क्या होनी चाहिये, तथा बालविवाह से क्या हानि होती है, यह मैं क्रम से कहूँगा।

दसवें वर्ष कन्या का विवाह न करे तो मा बाप नरक को जांय

प्राचीन शास्त्रों में तो बालविवाह के लिये कोई प्रमाण मिलता नहीं, परन्तु अर्वाचीन काल की पाराशर स्मृति और काशीनाथ के

शीघ्र बोध आदि पुस्तकों में इसके प्रमाण देखे जाते हैं। पाराशरी और शीघ्र बोध में लिखा है कि—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥

अर्थ—कन्या की आठवें वर्ष गौरी, नवे वर्ष रोहिणी और दसवें वर्ष कन्या संज्ञा होती है और इसके बाद रजस्वला होती है। जो उस रजस्वला कन्या को अविवाहित रखकर देखें तो उसके माता पिता तथा बड़ा भाई नरक को जाते हैं। गौरी पार्वती का नाम है और पार्वती को माता के समान माना जाता है अर्थात् आठवें वर्ष विवाह करना तो माता के साथ विवाह करने जैसा पाप है। और नवें वर्ष रोहिणी जो कृष्ण की माता है उसका भाव उसमें किया जाता है। इसलिये उसका भी निषेध किया गया है। हिन्दू शास्त्रों में लिखा है कि—'कन्यादान देना चाहिये'। मैं अब शास्त्रों से ही सिद्ध करूंगा कि कन्या जब तक अविवाहित हो वहां तक वह कन्या ही कहलावे, चाहे फिर वह सौ वर्ष की क्यों न हो? महाभारत में लिखा है कि—

"कौमारं ब्रह्मचर्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः"।

॥ अनु० पर्व० .१० २० ॥

जब तक ब्रह्मचर्य पाला जाय तब तक कन्या को कन्या ही कहना चाहिये। ५३ वर्षों की बड़ी उमर की स्त्री को कन्या कहा है। पाराशर के बड़े टीकाकार माधवाचार्य जिन्होंने वेदोंका भाष्य किया है उन्होंने लिखा है, कि ऋतुकाल होने के पश्चात् रजोदर्शन से शुद्ध होने के बाद भी उसको कन्या कहना चाहिए। (तालियों की ध्वनि) वह टीका वाली पाराशरस्मृति यहां नहीं मिलती है। परन्तु कलकते की रायल एशियाटिक सोसाइटी की लायब्रेरी में मिल सकती है।

'नव वर्ष की उमर में रजस्वला कैसे हो सके ?'

ऊपर कही हुई पाराशरी के श्लोक में दश वर्ष बाद रजस्वला होती है ऐसा जो लिखा है सो वास्तविक है वा कल्पित ? सच पूछो तो वैसा नहीं है; क्योंकि कन्या को १२—१३—१४ वर्ष की उमर में शरीरावस्थाके अनुसार स्त्रीधर्म प्राप्त होता है, परन्तु 'सब लड़कियों को दशवें वर्ष ही रजोदर्शन प्राप्त होता है' यह कहना कितने प्रमाद की बात है। जो दशवर्ष की मर्यादा कल्पित होय तो उसको सच्चे व्यवहार में उपयोग करना ठीक नहीं है। प्राचीन वैद्यक के ग्रन्थ सुश्रुत में लिखते हैं कि स्त्री धर्म जल्दी में जल्दी बारहवें वर्ष प्राप्त होता है, और ५५ वर्ष पीछे रजोदर्शन बन्द हो जाता है। जो दशवर्ष की उमर मनु को इष्ट होती तो मनु यों किस लिए लिखते कि—'जो कन्या के योग्य लायक वर न मिले तो चाहे जन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करे, परन्तु नालायक वर के साथ विवाह न करे" (तालियां) हिन्दूओं के संस्कार करने की "संस्कार कौस्तुभ" नामक पुस्तक जिस को सब हिन्दू मानते है, उसमें लिखा है कि—

"पिता ऋतून् स्वकन्याश्च गणयेदादितः सुधीः ।
दीनविधि गृहे यत्नात्पालयेच्च रजोवतीम् ॥"

अर्थः—पिता पुत्री की ऋतुप्राप्ति को संख्या ठीक २ गिनता रहे, यह उसका धर्म है और रजोवती कन्या को जितने दिन घर में रखना लिखा है, उतने दिन घरमें रख कर उसका पालन करना चाहिये। (तालियां) यह कुछ मेरा कहना नहीं है, परन्तु तुम्हारे शास्त्रकार का कहना है। पाणिनीय की अष्टाध्यायी में लिखा है कि—'कन्यायाः कनीन च' अर्थात् कन्या का जो कुछ हो वह कनीन और कन्या से कानीन शब्द बना है और जो कन्या दश ही वर्ष की हो तो इतनी वय में उसके पुत्र कैसे हो सकता है ? (तालियां) फिर महाभारत में लिखा है कि '**कानीनः करणो व्यासश्च**' अर्थात् करण और व्यास कन्या के पुत्र थे। पांडवों की माता कुन्ती को महाभारत में कन्या कहा है। जो वह कन्या अर्थात् दश वर्ष की होती तो क्या पांडवों का उससे जन्म होना युक्त हो सकता है ?

विवाह कौन करे ? स्वयं कि मां बाप ?

अब मैं वेद में विवाह का समय बतलाऊंगा, मैं छाती पर हाथ धर के कहूँगा कि कोई भी संस्कृत का पण्डित वेदों में बतलावे कि—'पुत्र-पुत्री के विवाह माता-पिता करें। अखबारों में जैसे कितने ही लोग अपना नाम नहीं देते हैं, परन्तु 'एक लिखने वाला' इस प्रकार अपने नाम लिखते हैं और अपना नाम छिपाते हैं (हंसी) वैसे नहीं, परन्तु मैं खोल कर कहता हूँ कि जो वेदों में ऐसा हो तो कोई पण्डित बतलावे। सब शास्त्रों में दोनों को युवावस्था में पहुंच कर अपने आप विवाह करना लिखा है। (जोर से तालियां) माता-पिता का काम पुत्र-पुत्री को पढ़ाना वेदों में कहा है, परन्तु उनके विवाह करना वेदों में नहीं कहा है। मनु आदि में ऐसा लिखा है कि—'पुत्री का विवाह पिता कर दे, परन्तु स्मृति में भी पुत्र का विवाह करने को तो नहीं लिखा है। अस्तु। अब वेदो में विवाह का क्या समय कहा है, इस पर मैं आऊंगा। वेद में लिखा है कि—

सोमोवधूयुर भवदश्विनास्तामुभावरा ।
सूर्या यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ॥ ८ ॥
॥ ऋ० १०—८५ ॥

सूर्य की पुत्री का विवाह और उमर

सायणाचार्य, कि जिसने वेदों का भाष्य पौराणिक पद्धति से किया है, उसने इसका अर्थ क्या किया है, सो देखें। सायण ने भाष्य के उपोद्घात में तो लिखा है कि वेदों में वस्तुविशेष का नाम नहीं है, परन्तु स्वयं भाष्य में उसने बहुत से इतिहास तथा बड़ी निन्द्य बात लिखी हैं। यहां तक कि मैं उनका उच्चारण भी नहीं कर सकता हूँ। ऐसा है तो भी वह वेदों के अर्थ कहां तक बदलेगा ? ऊपर के मन्त्र का अर्थ उन्होंने ऐसा किया है कि सूर्य्य भगवान् जो पृथ्वी से १३—१४ लाख गुना बड़ा है उनकी पुत्री सूर्या का विवाह चन्द्र के साथ हुआ ! चन्द्रमा (सोम) को उनके साथ विवाह की इच्छा हुई थी उसी समय दो अश्विनों को (जिनको हिन्दू लोग बड़े

वैद्य मानते हैं) भी उसके साथ विवाह की इच्छा हुई थी, उस समय उसकी उमर क्या थी? जो कि सायणने इस अंश में अशुद्ध अर्थ किया है तो भी वे भाष्य में कहते हैं कि **'पति-काम्यमानां प्राप्तयौवनां** इत्यर्थः अर्थात् वह युवावस्थामें आ गई थी और पतिकी कामना करने वाली हो गई थी। अश्विनी उसके साथ विवाह करना चाहते थे, तथा वह चन्द्र के साथ विवाह करना चाहती थी। इससे उसका विवाह उसके पिता ने उसके साथ कर दिया। इस मन्त्रका इतना अर्थ होते हुए भी सायणाचार्य इतना तो न छुपा सके कि कन्या का विवाह उसकी इच्छानुसार उसके युवा होने के बाद किया गया था। सत्य अर्थ तो और ही है। सूर्या का अर्थ विद्वान् पढ़ी लिखी लड़की होती है। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में

'असुर्या नाम ते लोका अंधेन तमसा वृताः।
तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥

इसमें असुर्य का अर्थ अविद्वान् हैं, वैसे ही सूर्य का अर्थ विद्वान् होता है। वैसी विदुषी स्त्री हो तो स्वयंवर करे इस स्वयंवर में अनेक लोग आते हैं। उसमें जिसको वह वरमाला पहनावे, वह उसका पति होवे। स्वयंवर में जो आते थे, उनमें से किसी को भी कन्या पसन्द कर सकती थी। अश्विन का अर्थ जैसे माना जाता है वैसे वैद्य नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका अर्थ स्त्री पुरुष किया हैं। तथा उसका अर्थ पृथिवी, आकाश रात्रि, दिवस, चन्द्र, सूर्य्य, विद्वान्, और अध्वर्यु होता है। जिसको कन्या पसन्द करे, उसी के साथ पिता विवाह करा सके। उसको पुत्री को आज्ञा करने की आज्ञा नहीं है। वह तो सलाह और सहायता ही दे सकता है। ऊपर कहे वेद मन्त्र का सत्य अर्थ ऊपर कहे अनुसार ही हो सकता है। ऋग्वेद के १०—२७—१२ मन्त्र में लिखा है कि विवाह करने वाले को कौन सी स्त्री उत्तम लगती है? जो सुन्दर हो, जो प्रिय, पति की याचना करती हो वही स्त्री पति को प्यारी लगती है। वेद मन्त्र का अर्थ स्पष्ट करने को स्वयं सायण ने भी एक उदाहरण

दिया है। उन्होंने लिखा है कि जैसे दमयन्ती आदि ने स्वयंवर किया था, वैसे ही दूसरी स्त्रियां भी परस्पर गुरण जान के विवाह करें। दश वर्ष से अधिक ऊपर तक कन्या का विवाह न होने से मातापिता नरक में जाते हैं, यह बात बिल्कुल गलत है।

पांडवों की माता कुन्ती का स्वयंवर

महाभारत में पांडवों की माता कुन्ती के स्वयंवर का वर्णन आया है। उसमें उसको तेजस्विनी, रूपयौवन की खान कह कर लिखा है यह कि उसके साथ विवाह करने को बहुत राजा उत्सुक थे। जो कुन्ती उस समय दश वर्ष की होती तो उसमें ऊपर कहे हुये गुरण कैसे होते? कुन्ती माता ने बाल्यवस्था में नहीं किन्तु युवास्था में ही विवाह किया था, इससे उसके ऐसे बहादुर, शूरवीर महान् पुत्र उत्पन्न हुये थे। युधिष्ठिर जैसे दृढ़ धर्मात्मा, अर्जुन जैसे शस्त्रधारी, और भीम जैसे बलवान् पुत्र किस के हुए हैं? इसका कारण माता के ब्रह्मचर्य के प्रताप के सिवाय और कुछ नहीं है (जोर से तालियां)

मुझे नहीं मालूम मेरे बाप को पूछो

परन्तु आजकल क्या देखा जाता है? पांच आठ अथवा दश वष की छोकरी का ८—१०—१२ बरस के छोकरे के साथ विवाह किया जाता है। मैं एक उदाहरण दूंगा। उन बिचारे पुत्रों (बालक) को विवाह क्या है, उसका क्या प्रयोजन है, यह बिलकुल नहीं मालूम होता है। आठ वर्ष हुये, मैं मुम्बई में था; उस समय मुझे एक गृहस्थ ने एक हास्यजनक बात सुनाई थी सो अभी तक मुझे याद है। एक छोटा लड़का शादी करने जाता था। घोड़े पर बैठे उस लड़के से उसके एक सम्बन्धी ने पूछा—'अरे! यह सब क्या होता है? यह वर घोड़ा क्यों निकाला है? तब वर राजा ने कहा मुझे नहीं मालूम! (हंसी) मेरे बाप से पूछो। किस का वर घोड़ा निकला है" (ज्यादा हंसी)

मइसोर में विवाह सम्बन्धी कानून उसके बनने का एक हास्यजनक कारण

आठ वर्ष हुये, मैं मुम्बई से चलकर मइसोर गया था। मइसोर

के राज्य में वहां के पूर्व राजा ने ऐसा कानून बनाया था कि १२ वर्ष से कम उमर की लड़की का विवाह न किया जाय। मैंने मइसोर के महाराजा से पूछा कि यह कानून बनाने का क्या कारण है ? श्रीमानों ने उत्तर दिया कि—'छोटी उमर में विवाह करने से जो नुकसान हुआ है, उसका मुझे अनुभव है। एक समय ऐसा हुआ कि मैंने एक पांच वर्ष की छोटी लड़की का विवाह करते देखा। हमारे राज्य में नियम है कि विवाह होते समय पहले कन्या वर को एक केला देती है और उसको खिलाकर पीछे आप खाती है। इसका आशय यह है कि स्त्री पहले पति को भोजन कराकर पीछे से स्वयं भोजन करे। यह जो पति सेवा की मर्यादा है सो व्यवहारिक रीति से विवाह के समय साक्षात्कार करना चाहिये। इस ऊपर कहे हुये उदाहरण में ऐसा हुआ कि उस पांच वर्ष की कन्या को केला दिया गया; परन्तु यह बालिका क्या समझे ? उसने उसका छिलका उतार कर पति को देने के बदले आप ही खा गई ! (खूब जोर की हंसी) आगे चलकर महाराजा ने मुझे बतलाया कि यह हाल देखकर मुझे बहुत ही बुरा लगा और छोटी उमर में विवाह करने से जो अन्धेर होता है सो मुझे मालूम हुआ ! उस दिन से मैंने विवाह की उमर का कानून बनाया। बिचारी छोटी लड़की को क्या खबर कि पति किस चिड़िया का नाम है ? (बड़ी हंसी)

अब आर्यावर्त में योद्धा और विद्वान् क्यों नहीं होते हैं ?

ब्रह्मचर्य का पालन न करना कुदरत के उत्तम नियम का उल्लंघन करने के बराबर है। कुदरत के नियम के विरुद्ध जल्दी विवाह करने के पक्ष में चाहे हजारों पुस्तकें लिखी जायं तो भी क्या कुदरत अपना स्वभाव छोड़ देगी ? प्राचीन काल में महान् ऋषि राजा और विद्वान् होते थे; अब क्यों नहीं होते हैं ? क्या आर्यावर्त की भूमि के वायु जल में परिवर्तन हो गया है ? नहीं हिमालय पर्वत जहां था हाल में भी वहीं है। गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियां भी जैसी थीं वैसी ही बहती हैं; तो भी आज आर्य संतानों की

स्थिति में परिवर्तन हो गया है, इसका कारण यह है कि पहले ऋषि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि अडतालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करते थे, उस समय स्त्रियां भी कम से कम १६ से २४ वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रहती थीं इससे उन ब्रह्मचारी माता पिता के सन्तान बहादुर शूरवीर होते थे।

बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह

महाभारत में कृष्ण महाराज कहते हैं कि हे युधिष्ठिर! भीष्म पितामह सारी पांडव सेना से न डिगे, महाबाहु अर्जुन से भी न थके; और जब छलकपट से उनके सामने शिखंडी खड़ा किया गया तब ही वे वाणों से विंध गये। अब वे अनेक वाणों से विन्धे वाणशय्या पर पड़े हैं तो भी अभी कैसे स्वस्थ हैं? ऐसी असाधारण सहन शक्ति का क्या कारण? कारण यही कि भीष्म की माता गंगा का गर्भ जब मजबूत हुआ था तभी उसने भीष्म को धारण किया था। (तालियाँ) आर्यावर्त्त में सबसे महान् ब्रह्मचारी योद्धा श्री भीष्म हुये हैं। उनके बाद कोई हुआ ही नहीं। (तालिया)

लड़के का लड़का

आज कल कन्या दसवें बारहवें वर्ष और पुत्र १४-१५वें वर्ष विवाह करते हैं। खुद लड़का और उसका भी लड़का (हंसी) बड़े रोब से कहते हैं कि हम तो मर्द के बच्चे हैं परन्तु मर्द का बच्चा तो कुछ भी पुरुषार्थ कर सकता है; लड़के का लड़का क्या कर सकता है? (हंसी और तालियां) आज कल सब ही गाय, भैंस, बकरी जैसे नरम है। यह तो ठीक है कि अंग्रेज सरकार का राज्य है; फ्रेंच रूसियों का भय नहीं हैं। नहीं तो तुम लड़कों के लड़के क्या कर सकते हो? हिन्दुओं की कायाशक्ति का नाश ब्रह्मचर्य के नाश से हुआ है। १२-१३ वर्ष की लड़की का पेट तो प्रमाण में बहुत छोटा होना चाहिये। वह हथेली में समा जाय (हाथ दिखाकर बतलाया) उसका बच्चा भी उतना ही छोटा हो सके और इसी से उसके जो बच्चे पैदा होवें वे भी चूहे जैसे छोटे पिल्ले जैसे ही होंगे। (हंसी)

यमराज का वारण्ट

जो तुम शान्त भाव और बुद्धिपूर्वक देखोगे तो तुमको मालूम होगा कि आजकल की प्रजा के अधिक भाग की आंखें गहरी घुस गई, गाल बैठ गये, रंग पीला पड़ गया और शरीर मांस रहित सा होता है। जब तक जवानी की उमर में विवाह न किया जाय तब तक देश की उन्नति नहीं होने की। मैं यह सुधार करने का आग्रह करता हूँ; क्योंकि यह वेदानुकूल है। मैं कुछ ऐसा सुधारक हूँ कि जिसके लिये वेद और शास्त्रों में सम्मति न हो तो भी में उसका प्रतिपादन करूं। शास्त्रों में ऐसा कुछ भी नहीं लिखा है कि जो तुम कन्या का दसवें वर्ष विवाह न करोगे तो तुम्हारे ऊपर यमराज का वारण्ट आवेगा। (हंसी) यूरोपियन लोग जब तक जवान नहीं होते, तब तक कुंवारे रहते हैं और शायद विवाह भी नहीं करते। यह नियम कुछ नया नहीं है, परन्तु अपने प्राचीन ऋषि मुनियों की ही रीति है (तालियां)

बड़ी वय में कन्या का विवाह होने के महाभारत में दृष्टान्त।

महाभारत में कन्या के बड़ी उमर में विवाह करने के अनेक दृष्टान्त हैं। उनमें से थोड़े से यहां दूंगा:—

स समीक्ष्य महीपालः स्वां सुतां प्राप्तयौवनाम्।
अपश्यदात्मनं कार्यं दमयन्त्याः स्वयंवरम्॥
वन पर्व अ० ५३ श्लोक ८।

वैदर्भीन्तु तथा युक्तां युवतीं प्रेक्ष्य वै पिता।
मनसा चिन्तयामास कस्मैदद्यामिमां सुताम्॥

दमयन्ती को जवान हुई उसके पिता राजा ने देखा। इसलिये उसने दमयन्ती के स्वयंवर की इच्छा की। विदर्भ देश की लोपामुद्रा जब यौवनवस्था में हुई तो उसके पिता ने विचार किया कि इसका विवाह किसके साथ करना चाहिये।

संप्राप्तयौवनां पश्यन् देयां दुहितर तु ताम्।
स शीलयन् देवयानीं कन्यां संप्राप्तयौवनाम्॥
(महाभारत आदि० अध्याय ७६, श्लोक २५)

ऊपर कहे अनुसार शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने पर भी क्षत्रीय राजा ययाति के साथ विवाह किया था। जन्म पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करने वाली स्त्रियों के उदाहरण भी महाभारत में दिये हैं। जैसे लोमश ऋषि कि जिनका जैसा दीर्घायुष कोई ऋषि हुआ ही नहीं, वे भारत के शल्य पर्व ५४ अध्याय में कहते हैं।

अत्रे व ब्राह्मणो सिद्धा कौमारब्रह्मचारिणी।
योगयुक्ता दिवं याता तपः सिद्धा तपस्विनी ॥६॥
वभूव श्रीमती राजन् शांडीलस्य महात्मनः।
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी ॥७॥
सा तु तपत्वा तपो घोरं दुश्चरं स्त्रीजनेन ह।
गता स्वर्गं महाभागा देव ब्राह्मणपूजिता ॥८॥

(शल्यपर्व अ० ५४)

लोमश ऋषि युधिष्ठिर से कहते हैं, इस स्थान पर शांडिल्य ऋषि की कन्या धृतवती जन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करके तप किया और विद्वानों से सत्कार पाकर मोक्षधाम को चली गई। फिर कहा है कि:—

"भारद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि।
श्रुतावतीं नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी ॥
साऽहं तस्मिन् कुले जाता भर्तर्यसति यद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम् ॥

महाभारत के ४६ वें अध्याय में लिखा है कि भारद्वाज की पुत्री ने भी जन्मपर्यन्त कुमारव्रत पाला था। सुलभा नाम की राजपुत्री ने अपने समान कोई पति न पाने से विवाह न किया था। जो ब्रह्मवादिनी थी और जिसने योगबल से सीता के पिता महाराजा जनक के होश भुला दिये थे वह भी कुमारी थी। अब जो कन्या का अर्थ दस वर्ष की लड़की ऐसा होता तो ऋषि कन्याओं का आजन्म विवाह न करना और ब्रह्मचर्य पालन करना कैसे सम्भव

हो सकता है? परन्तु अब गड़बड़ हो गई है। कितनी ही अर्वाचीन पुस्तकों में तो यहां तक लिखा है कि 'नग्निका तु श्रेष्ठा' अर्थात् नंगी फिरती कन्या के साथ विवाह करना सबसे उत्तम है (हंसी) कडुये कुनबियों की जातियों में एक दिन के पुत्र पुत्रियों का विवाह हो जाता है और मैंने सुना है कि कभी कभी तो पेट में ही विवाह कर दिये जाते हैं (हंसी)

वेद में विवाह सम्बन्धी परस्पर प्रतिज्ञा वाक्यादि ये हैं

ऋग्वेद के आठवें अष्टकमें बर-कन्या जो (प्रतिज्ञा) इकरार करते हैं, उसका वर्णन किया है। उसमें बतलाया है कि वर को ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि—'हे स्त्री! मैं तेरा संग इस जन्मभर न छोड़ूंगा। मैं सदा तुझको सुख दूंगा और तेरे अधीन रहूँगा, स्त्री को ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि—'हे पते! तेरी इच्छा विरुद्ध मैं आचरण न करूंगी, मैं तेरा सन्मान ही करूंगी, मैं तेरा सत्कार अवश्य करती रहूँगी, ऐसी ऐसी प्रतिज्ञाएं कन्या बाल्यावस्था में कैसे कर सकती हैं? सरकारी कानून देखने से भी मालूम होगा कि लड़का १८ वर्ष की उमर के अन्दर अल्पायु (नाबालिग) गिना जाता है, और उसकी प्रतिज्ञा प्रमाणमूल नहीं समझी जाती। छोटे २ अबुद्ध बच्चे तो क्या प्रतिज्ञा कर या समझ सकते हैं? परन्तु आजकल तो ऐसा अन्धेर है कि—'वर मरो कि कन्या मरो, गौर का घर भरो!' आज कल पुत्र-पुत्री तो छोटे होने से प्रतिज्ञा पढ़ ही नहीं सकते हैं, इससे पुरोहित जी ही पढ़ लेते हैं। जो बड़ी उमर में पुरोहित की पढ़ी प्रतिज्ञा के विरुद्ध चले तो उसका पाप किसके सिर पर? (पुरोहित के शिर पर की आवाज) जो वे एक दूसरे को छोड़ें तो भी उसके भागी वे नहीं हो सकते; क्योंकि अज्ञानता में उनका विवाह होता है।

कन्या की योग्यता आदि के सम्बन्ध में वेद मन्त्र

इयं नार्युपब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥

अथर्व० १४। २। ६३॥

वेद में इस प्रकार की आज्ञा है कि विवाह करने वाली स्त्री पूर्णयौवन, कदावर, मजबूत होनी चाहिये और "आवपन्तिका" अर्थात् वह (गृह) संसार कर्म करने के योग्य होनी चाहिये। उसको प्रार्थना करनी चाहिये कि मेरा पति सौ वर्ष तक जीवे और सौ वर्ष की आयुष्यवाला होवे, अथर्ववेद में—

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृह पत्नी यथासोदीर्घं त आयुः सविता कृणोतु॥
अथर्व० १४।२।७५॥

इस प्रकार पति को कन्या के साथ विवाह करके कहना चाहिये कि—"तू बड़ी बुद्धिमती है, अनुभवी हैं; दीर्घ सौ वर्ष की उमर बिताने को तू घर चल और घर की मालिक हो। सविता परमेश्वर तेरी उमर बड़ी करे।" अथर्ववेद के १४ वें काण्ड में कहा है कि—

चक्रवाकेव दम्पती ॥ अथर्व० १४।२।६४॥

अर्थात् "जैसे चकवा चकवी का एक ही जोड़ा रहता है, वैसे पुरुष को भी एक ही समय में अनेक विवाह न करना चाहिये, परन्तु आजकल तो अन्धेर चल रहा है। ६० वर्ष का बूढा आठ वर्ष की लड़की से विवाह करे। जब वह बारह वर्ष की हो तब बूढ़े की राम राम सत्य है (हंसी) तो भी ऐसी छोटी उमर की विधवा फिर से विवाह न कर सके यह कौन से न्याय की बात है! मनुष्य नीति में सब से बढ़कर होशियार और साथ ही दुष्ट भी होता है। कोई भी प्राणी विश्वासघात नहीं करता है, परन्तु मनुष्य करता है। सिंह की गरज से बकरी डरकर बलवान् मनुष्य के शरण में जाती है, परन्तु वह बिचारी थोड़ा ही जानती है कि ये हजरत खुद उसको स्वाहा करने वाले हैं, परन्तु पुरुष कुछ अकेली बकरी को ही नहीं किन्तु अपनी स्त्री, माता, बहन के ऊपर भी अन्याय करता है। एक आदमी ने मुझसे पूछा कि—'स्त्रियों की नथनी का मतलब तुम जानते हो?' मेरे ना कहने से उसने कहा कि असल में बैल की तरह पुरुष स्त्रियों के नाथ डालते थे, परन्तु सुधारकों के प्रताप से यह रिवाज मिट

गया है। तो भी वह नाथ बदलकर अब सिर्फ नथनी के रूप में बाकी रह गई है। मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि पुरुष को एक ही स्त्री के साथ बड़ी उमर में विवाह करना चाहिये और दोनों के समान सत्त्व (हक) समझकर वर्ताव करना चाहिये। पुरुष चाहे कितनी ही उमर तक विवाह करता जाय और स्त्री न करे ऐसा मानना कैसी दुष्टता की बात है?

माता के गर्भ के संस्कारों का पुत्र पर असर

माता का गर्भ मजबूत होने से ही सन्तान मजबूत हो सकती है। पिता की अपेक्षा माता के संस्कार सन्तान पर बहुत ही भारी असर करते हैं। मैं एक दृष्टान्त दूंगा। एक समय एक एम० ए० ने मुझसे पूछा कि—"मैं भूत प्रेत नहीं मानता हूँ। मुझे मेरे प्रोफेसरों ने बहुत ही समझाया कि भूत कोई वस्तु नहीं है और मुझे निश्चय भी हो गया है; परन्तु मैं अन्धेरे में जाता हूँ तो मुझे भूत की शंका होती है इसका क्या कारण होगा?' मैंने उनसे बहुत बातें पूछीं, अन्त को मैंने पूछा कि—'क्या तुम्हारी माता पढ़ी हैं?' उसने कहा नहीं फिर मैंने पूछा कि—'वे भूत मानती हैं? और तुमको लड़कपन में भूत से डराया करती थी?' उन्होंने कहा—'हां मैं जब छोटा था, तब मुझे हमेशा कहा करती थी कि फलाने पीपल पर भूत रहता है, इस लिये वहां मत जाना' मैंने कहा कि 'बस यही तुम्हारे डर का कारण है, हजारों प्रोफेसरों की क्या ताकत है कि लड़कपन में माता के घुसेड़े भूत को निकाल सकें (हंसी) चाहे कितना ही प्रोफेसर कहे, परन्तु रात को सोनापुर (मरघट) की तरफ जाते तो वह डरते ही! (हंसी) हाल में हिन्दुओं में बहुतेरे लड़के बेरिस्टर होते हैं, सिविलियन होते हैं, डाक्टर इंजीनियर होते हैं; परन्तु आखिर को बन्दा मोची (हंसी) क्योंकि माताओं की ओर से उनको शायद ही कहीं उत्तम शिक्षण मिलती है। और छोटे गर्भ वाली माता होने से सन्तानों में शूरवीरता नहीं आती है, तथा अधिकांश वे अशिक्षिता होती हैं, इसलिये उनकी तरफ सन्तानों की जैसी चाहिये वैसी

पूज्य बुद्धि भी नहीं होती। हिन्दू लोग स्त्रियों के विषय में बहुत ही स्वार्थी हो गये हैं। उन्होंने जाना कि पुत्र तो एम० ए०, बी० ए० होकर टके कमावेगा, परन्तु पुत्री को पढ़ाने में खर्चे हुये रुपये व्यर्थ हो जायेंगे; क्योंकि लड़की की जात पराया धन है बड़ी होने पर पराये घर चली जायगी। इसलिये क्यों पढ़ावें? (हंसी) परन्तु उनकी इतनी दीर्घ दृष्टि नहीं होती है कि जैसी उनकी पुत्री दूसरों के घर जावेगी वैसे ही दूसरों की उनके घर आवेगी और जो वे भी इनकी तरह अपनी पुत्रियों को शिक्षा न दें और इसी तरह अगर माता छोटी उमर की होवे तो वह अशिक्षित भी होगी इससे सन्तान पर बहुत खराब संस्कार पड़ते हैं। यह तो सब जानते हैं कि बालक पर गर्भ में सबसे बलवान् संस्कार पड़ते हैं। इस विषय में मैं फ्रांस की लड़ाई का उदाहरण दूंगा। ३०-३२ वर्ष हुये, यूरोप में फ्रैंको-जर्मन लड़ाई हुई थी। उस समय फ्रांस में स्त्रियों को और खासकर गर्भवती स्त्रियों को ऐसा भय लग गया था कि—'कौन जाने जर्मन लश्कर हमको क्या करेगा'। माताओं के इस डर का पुत्रों पर बड़ा ही भयंकर असर पड़ा था। यहां तक कि इस अवसर में जो बालक जन्मे थे, वे अल्पायु तथा डरपोक हुये थे। पिता की अपेक्षा माता के साथ सन्तानों का विशेष सम्बन्ध होता है, इस लिये शास्त्रों में माता को बालकों का प्रथम आचार्य कहा है, परन्तु खेद है कि हाल में सन्तानों के इन आचार्यों में 'तीनों नदारद' है (हंसी)

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में धर्म शास्त्र की अपेक्षा वैद्यक विद्या की श्रेष्ठता

धर्म शास्त्रों में जो बातें वेद विरुद्ध हों तो वह अमान्य हैं। जैसे प्रसंगोपात्त वैद्यक सम्बन्धी कोई बात इन्जीनियरिंग की पुस्तक में आई हो और वैद्यक के ग्रंथो से विरुद्ध हो, तो वैद्यक के ग्रंथ की बात ही मानने योग्य समझी जायगी न कि इन्जीनियरिंग की। एक शास्त्र का दूसरे शास्त्र से सम्बन्ध होता है। वैद्यक विद्या का जैसे विवाह और ब्रह्मचर्य के साथ सम्बन्ध है; वैसे ही धर्म शास्त्रों के साथ भी सम्बन्ध है; परन्तु विवाह के विषय में प्रधानता से वैद्यक विद्या का ही सम्बन्ध है। विवाह की जो आयु वैद्यक शास्त्र में

योग्य कही हो और धर्मशास्त्र में वह योग्य न कही हो तो भी वह धर्म शास्त्र का कथन मिथ्या समझा जायगा। वैद्यक के ग्रंथों में लिखा है कि—'वर-कन्या की उमर कम से कम पचीस और सोलह वर्ष की होनी चाहिये, परन्तु दूसरे ग्रंथों में उससे बहुत छोटी उमर लिखी है और वह वैद्यक विद्या से विरुद्ध होने के कारण अमान्य होनी चाहिये। धनवन्तरी को हिन्दू लोग ईश्वर का अवतार मानते हैं। वे कहते हैं:—

ऊनषोडषवर्षाणा प्राप्तः पञ्चविंशतिः।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भः कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरं जीवेत् जीवेत् वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

कम से कम कन्या सोलह वर्ष और पुरुष पचीस वर्ष से पहिले उनके बीच में सम्बन्ध न होना चाहिये। यदि सम्बन्ध होगा तो गर्भ नहीं रहेगा और जो गर्भ रह भी गया तो गिर जायगा। जो संतान हो भी गई तो वह दीर्घ जीवी नहीं होगी और जो कदाचित् जीवे तो दुबली पतली रहेगी। इसके अतिरिक्त प्राचीन वैद्यक सम्बन्धी महान् लेखक चरक, वागभट्ट, आदि भी ऐसा ही कहते हैं। हम सब प्रत्यक्ष प्रमाण से देखते हैं कि—'आज कल की अब्रह्मचारी प्रजा दुर्बल निर्बल और अल्पायु हैं, मान लो कि धर्म शास्त्रों में काली मिर्च का ऐसा वर्णन किया हो कि वह बहुत मीठी होती है, परन्तु इससे क्या उसकी तिखास कुछ मिट जायगी? इसलिये यदि धर्मशास्त्र में कुछ नियम विरुद्ध लिखा हो तो उसको ग्रहण करने से नुकसान की जगह कुछ फायदा न होगा। मैं तुमसे देश उन्नति के लिये कहता हूँ कि बाल विवाह रूपी डाकनि को तुम छोड़ो, कि जिससे देश की उन्नति हो (तालियां)।

श्री कृष्ण जी कन्यादान के विषय में क्या कहते हैं?

धन्वन्तरि ऋषि को ईश्वर का अवतार मानते हुए भी हिन्दुओं में उनका बहुत मान नहीं है। २४ अवतारों में जो सबसे ज्यादा मान्य श्री कृष्ण हैं, वे स्वयंवर के विषय में क्या कहते हैं सो मैं

कहूंगा। हिन्दू दूसरे अवतारों को तो ईश्वर की एक कला रूप ही मानते हैं और उनको शिरसा वंद्य मानते हैं। महाभारत में लिखा है कि...'वसुदेव की पुत्री सुभद्रा का स्वयंवर जब हुआ तो उसमें अनेक राजा एकत्र हुये थे। अर्जुन ने उस विदुषी पर मोहित होकर उसके साथ विवाह करने की इच्छा श्री कृष्ण को दिखाई। कृष्ण ने कहा कि सब राजाओं को छोड़कर तुमको कैसे कह दूं? परन्तु एक उपाय है कि—'तुम क्षत्रिय हो और इससे तुम में तामस गुण है; इसलिये यदि तुम चाहते हो तो सुभद्रा को भगा ले जाओ।' अर्जुन ने वैसा ही किया। इस जगह शुक्राचार्य लिखते हैं कि—'श्रीकृष्ण समान पोलिटिकल, राजद्वारी, कुशल, थोड़े ही होने चाहियें कि जिन्होंने अपनी बहन को भगा ले जाने का उपदेश किया!!' (हंसी) अस्तु सुभद्रा के गुप्त हो जाने से यादवों में कोलाहल मच गया। बलभद्र बड़े शूरवीर थे, परन्तु उनमें एक दोष था कि वे भोले थे (हंसी) उनको क्रोध आया और कहने लगे कि—'हे अर्जुन! मैं तुझे मार डालूंगा' कृष्ण ने कहा कि—'जरा दृढ़ हो तो। बलभद्र के शान्त होने पर कृष्ण ने कहा कि—'हे बलभद्र! अर्जुन ने शास्त्रानुसार सुभद्रा के साथ आसुर विवाह किया है। वह जरा कनिष्ठ प्रकार का विवाह है। परन्तु तुम कहो तो सही कि उसमें बुरा क्या है। क्या सुभद्रा को अर्जुन से श्रेष्ठ कोई पति मिलता?' उन्होंने कहा कि—न मिलता तो कन्यादान तो मैं करता!' इस पर कृष्ण ने कहा—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोनुमन्यते।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि॥

महाभा० आ० अ० २२२

हे बलभद्र! कन्या का दान तो पशु बेचने के समान है।

कन्या को बेचने का किसी को (सत्व) हक नहीं है। पशु और निर्जीव वस्तु का दान हो सकता कि मनुष्य का? मनुष्य बेचना वा दान करना कौन उत्तम समझे? इसलिये तुम्हारा शोक मिथ्या है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय कन्यादान का रिवाज शुरू होगा; नहीं तो कृष्ण खण्डन क्यों करते? कन्या को पूरी उमर की होकर

उसको अपनी इच्छानुसार पति पसन्द करके विवाह करना चाहिये। पिता उसको इस विषय में सलाह और सहायता दे, परन्तु उसको आज्ञा नहीं कर सकता। (तालियां)

पिंगल में 'धी, श्री, स्त्री' ऐसा एक सूत्र है। प्राचीन ऋषि लोग अपने ग्रन्थों में ऐसे सूत्र बनाया करते थे कि जिनमें शब्दलाघव हो और अर्थ बाहुल्य हो। धी, श्री, स्त्री, इन तीनों का अर्थ बुद्धि, धन, तथा स्त्री है। इसका आशय यह है कि इनको जिस क्रम से सूत्र में रक्खा है उसी क्रम से प्राप्त करना चाहिये अर्थात् मनुष्य को प्रथम बुद्धि प्राप्त करके धन प्राप्ति के साधन प्राप्त करने चाहिये और पश्चात् न कि पहिले ही विवाह करना चाहिये। (तालियां)

बाल विवाह का कारण

महाभारत युद्ध के पश्चात् देश में अविद्या तथा कुसंग फैल गये। कालक्रम से विदेशियों के आक्रमण शुरू हुये। उनमें से कितने ही दुष्ट युवा कन्याओं को उड़ा ले जाते थे और खास कर अविवाहित कन्याओं को ले जाने में पुण्य समझते थे। उस समय के पण्डितों ने देखा कि इस आफत में से बचने का यही उपाय है कि कन्याओं का विवाह जल्दी कर देना चाहिए, कि जिससे वे बच तो जायं। परन्तु अब तो अंग्रेजी सरकार का राज्य है, इसलिये अब उस रीति की जरूरत नहीं है। अब तो उससे नुकसान है। शास्त्रों में पुरुष के लिए ज्यादा से ज्यादा ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करना लिखा है। परन्तु आजकल तो ४८ वर्ष में मरघट की चिता में घुसने का समय आता है (हंसी)। परन्तु अब धीरे २ लड़कों की उमर २०,-२१,-२२, वर्ष तथा लड़कियों की १४,-१५,-१६ इस प्रकार बढ़नी चाहिए (तालियां) कुछ हमारे लोग ही नहीं किन्तु प्राचीन काल में और लोग भी ब्रह्मचर्य को लाभकारी समझते थे। एक समय "लुकमान हकीम की स्त्री को पुत्रेच्छा होने से उसको पति से स्वयं कहने की हिम्मत न होने से अपने एकलौते पुत्र द्वारा कहलाया कि—'मुझे दूसरा भाई चाहिये।' लुकमान ने कहा कि—'एक बार ही दुनियादारी में पड़ने से मेरी आधी अकल गुम हो गई है, और जो फिर पड़ूं तो बाकी रही

आधी भी चली जाय' (हंसी)। इससे ज्ञात होता है कि विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य को कितना जरूरी समझते थे। प्राचीन काल में बिना ब्रह्मचर्य के कोई ब्राह्मणत्व को नहीं पाता था, ब्रह्मचर्य के प्रताप से हिम से ढके हिमालय के शिखरों पर वास करके ऋषि लोग महान् विद्वान् हुए थे।

महान् कार्य करने वाले ब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी ब्राह्मण भी क्षत्रिय जैसे शूरवीरों को हरा सकते थे इसका दृष्टान्त परशुराम ने क्षत्रियों को २१ बार परास्त किया था, परशुराम एक बार राजा दशरथ को रास्ते में मिले; उनको देखते ही दशरथ भयभीत हो गये। भीष्म जैसे सहनशील, हनुमान् जैसे शक्तिमान् शंकर और दयानन्द, (जोर की तालियां) जैसे धर्मयोद्धा, शकुनि आदि महान् ब्रह्मचारी थे वही दुनियां में महान् कार्य करने योग्य हुए। अन्त में मेरी यही प्रार्थना है कि—"युवावस्था तक ब्रह्मचर्य धारण करके विवाह करने के लाभों का उपदेश तुम अपने बहनों, पुत्रियों, तथा भाइयों को करके उनका तथा अपना परलोक तथा इहलोक सुधारो" इत्याशास्महे (तालियां)

—:❀:—

संसार की विचित्र गति

यह संसार कभी एक रस नहीं रहा और न रहता है, इस लिये इस संसार को विचित्र कहा जाता है और इसी कारण विद्वान् लोग इसे सागर या नाटक की उपमा देते हैं।

जन्म होते समय मनुष्य को "वह कहां से आया है?" इस बात का ध्यान नहीं रहता है। सब प्राणियों में मनुष्य योनि श्रेष्ठ गिनी जाती है और वास्तव में है भी ऐसा ही; परन्तु सैकड़ों मनुष्य कहाने वालों में मनुष्य नाम को सार्थक करने वाला एक भी मनुष्य कठिनता से मिलता है। प्राणी दो तरह के होते हैं एक हिंसक और दूसरे

अहिंसक। हिंसक अपनी आवश्यकता से भी अधिक हानि करते हैं, भेड़िये की एक बकरी से तृप्ति हो सकती है, परन्तु वह किसी के बाड़े में घुस कर व्यर्थ अनेक बकरियो का घात करता है संसार में भेड़िये जैसे भी मनुष्य होते हैं। मनुष्य जो कर्म करता है, उससे उसकी परीक्षा होती है। संसार में जन्म पाकर कोई भी अपराध न किया हो" और जिसने बचपन में बिना गिरे ही चलना सीख लिया हो? ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है मनुष्यमात्र में परिमित शक्ति है, मनुष्य भूलते हैं और ठोकरें खाते हैं। इन विघ्नों से मनुष्य को रुक न जाना चाहिए किन्तु कर्मयोगी बन कर योग्य होते जाना चाहिये। केवल वे ही मनुष्य, मनुष्य कहलाने योग्य हैं, जो विघ्नों के आने पर भी कार्यक्षेत्र में डटे ही रहते हैं।

तदनन्तर स्वामी जी ने "व्याख्यान माला" के प्रयोजक स्वर्गवासी मि० जेठाभाई प्रेम जी की प्रशंसा की।

स्वर्गवासी उक्त सेठ साहब ने १५००० हजार रुपये कन्यापाठशाला को ३००० रुपये काशी पाठशाला को और (अपने परिवार के लिये १५००० सहस्र मात्र रख कर) शेष श्री स्वामी दयानन्द कृत 'सत्यार्थ प्रकाश' का गुजराती भाषान्तर करवा के कम कीमत में बेचने के निमित्त देने के लिये अपने 'मृत्यु पत्र' में आदेश किया है। उन्होंने मुझ से दश व्याख्यान देने के लिए आग्रह किया था। यद्यपि इसके लिये मेरे पास समय नहीं है, तथापि उनके मृत्युपत्र के ट्रस्टियों (संरक्षकों) के विशेष आग्रह से मैंने व्याख्यान देना प्रारम्भ किया है।

कवियों ने संसार की विचित्रता पर अनेक काव्य लिखे हैं। मनुष्यको कई २ भांति के ज्ञान होने का अभिमान होता है, परन्तु वस्तुतः वह छोटी २ बातों को भी नहीं जानता, ऐसा देखा गया है। यदि उसने वनस्पति शास्त्र का उत्तम प्रकार अध्ययन नहीं किया हो तो वह पुष्प की पंखुड़ियों की बाहरी खूबसूरती के सिवाय उसके संगठन के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता। "हाउस वाइफ" सीरीज की एक पुस्तक में मैंने एक बात पढ़ी है। उसमें उसका लेखक

कहता है कि, मैं जब दश वर्ष का था, तब अपनी रक्षिका से पूछता था कि, दीपक की ज्योति बुझ कर कहां गई? वह मुझ को कुछ उत्तर न दे सकती थी। गेहूँ कहां से उत्पन्न हुआ? यह प्रश्न भी मैंने बाल्यावस्था में किया था, परन्तु आज तक मेरी शंका का समाधान नहीं हुआ। विद्युत का ज्ञान आजतक अपूर्ण है। अधिक क्या कहा जाय, अपने आपको भी तो हम नहीं समझते! आत्मा के सम्बन्ध में कई मन्तव्य है। सायन्टीफिक विषय सिद्ध होने से समझ सकते हैं परन्तु फिलासोफी की बात केवल बुद्धिगम्य होने से दिमाग फिर जाता है। (एक फूल को उठाकर) "मेरे हाथ में यह फूल है" इसका निरूपण सायंस से सहज में हो सकेगा, परन्तु फिलासोफी की दृष्टि से (एक पंखे को उठा कर) "यह पंखा है" ऐसा सिद्ध करना भी कठिन होगा। कई (शंकराचार्यादिक) कहते हैं कि "सृष्टि में जो कुछ है, वह कल्पनामात्र ही है। हर्बर्ट स्पेन्सर कहता है 'कि पदार्थों की उत्क्रान्ति और अवक्रान्ति होती है, परन्तु सृष्टि कल्पनामात्र नहीं है।" जब साकार पदार्थों में इतना विवाद होता है, तो निराकार की तो बात ही क्या? और हम अपने को उस विषय में अज्ञानी समझें उसमें क्या आश्चर्य! इसलिए संसार की प्रथम विचित्रता तो यह है कि हम—आप क्या हैं सो भी हम नहीं जानते।

"पोलीटीकल इकोनोमी" (अर्थशास्त्र) में जिससे अपना अर्थ सिद्ध हो उसको धन कहा है। नोट का दश वा दश हजार मूल्य है, वह कृत्रिम है। नोटों के प्रभाव का कारण राज-सत्ता का धर्म है। संसार में सब से श्रेष्ठ साहूकार (महाजन) सरकार है। उस पर विश्वास होने से अथवा उसका अधिकार होने से कम कीमत के रुपये का और निकम्मे कागज के नोट का पूरा मूल्य होता है। उसी प्रकार पीतल के टुकड़े की मूर्ति बना; उस पर चन्दन लगा लोग उसको त्रिलोकीनाथ मानते हैं; यह भाव भी कृत्रिम है। कल्पना करो कि मूर्तिकार उस पीतल की मूर्ति को बेचता है तो उसकी कीमत पीतल के भाव के अनुसार ही होगी, यह मूर्ति की कीमत कल्पित है। इस

संसार में अन्ध विश्वास, भाव और कृत्रिमता से जो वास्तविक मूल्य से कई गुणा अधिक मूल्य बढ़ जाता है यह संसार की द्वितीय विचित्रिता है।

एक मनुष्य मूर्तिपूजार्थ एक पैसे की शर्करा (चीनी) मोल लेता है, पंसारी को शर्करा की परीक्षा न होने से पंसारी उसको फिटकरी दे देता है, पूर्ण श्रद्धा से उस[illegible] नैवेद्य बनता है, परन्तु जब वह मनुष्य उसे पूर्णभाव से (शर्करा समझ कर) प्रसाद के प्रयोजन से मुंह में रखता है उसे शर्करा का स्वाद आता ही नहीं है भैंस के आगे भागवत की कथा करनी निरर्थक है परन्तु यदि विचार किया जाय तो इसी से सत्य और असत्य भावना की सुस्पष्ट परीक्षा हो जाती है! लोग रूढ़ि के आधीन होकर जिस अन्धपरम्परा को मानते आये उसी को मान रहे हैं। परन्तु सत्यासत्य का निर्णय परीक्षासे हो जाता है। जैसे सब पुराणों में लिखा है कि पृथिवी का वृत्त (परिधी) पचास करोड़ योजन है। परन्तु ज्योतिष शास्त्र में लिखा है कि वह पचीस हजार माइल है!" इन दोनों में झूठा कौन? पौराणिक या ज्योतिष, जब तक जांच न की जावे तब तक कुछ न बन पड़ेगा यदि तर्क से सिद्ध हो जाय कि वह पचास हजार मील है तो फिर व्यास जी तो क्या, परन्तु व्यास जी के पिता क्यों न कहें कि "पचास हजार योजन (दो, अब्ज मील) है" किन्तु वह मानना अनुचित होगा। यहां यह भी प्रकट कर देना आवश्यक है कि वस्तुतः पुराणों के कर्ता व्यास नहीं है।

आगे चलकर स्वामी जी ने "सिद्धान्त शिरोमणि" नामक ग्रन्थ के कुछ प्रमाण देकर और उनके अर्थ करके समझाये।

भास्कराचार्य कहते हैं कि द्वितीया के दिन चन्द्र जो शृंगयुक्त अर्ध वृत्ताकार शिरा जो किसी समय न्यूनाधिक होती है, उसका कारण सूर्य का प्रकाश चन्द्र पर पड़ना ही है। यदि पृथिवी की परिधि भागवतादि पुराणों के अनुसार दो अब्ज मील होती तो ग्रहण ही न हो सकता! पुराणों में लिखा है कि "पृथिवी के बीच में मेरु पर्वत है

ग्रौर उस मेरु के चारों ग्रौर सूर्य घूमता है" परन्तु भास्कराचार्य के कथन से सिद्ध होता है कि सूर्य उत्तरायण ग्रौर दक्षिणायन होता है, इससे भी पुराणों की बातें झूठी समझी जाती है, कई मनुष्य ग्रपने धर्मानुसार दो सूर्य मानते हैं। यद्यपि ग्रनेक भांति सिद्ध हो चुका है, कि पृथिवी पर सूर्य एक ही है, तथापि वे कहते हैं कि दो सूर्यों का होना तो भगवान् ने स्वयं कहा है। क्या वह मिथ्या हो सकता ?" "हम प्रत्यक्ष देखते हैं सो ग्रसत्य हो सकता है, परन्तु हमारी पोथा जी की बात कैसे ग्रसत्य होगी ? ऐसी ग्रन्धश्रद्धा रखना यह भी संसार की एक विचित्रता है।

ग्राकाश की माप कोई नहीं कर सकता, संस्कृत में उसको ग्रनन्त कहा है कई ऐसी बातें हैं जिनको हम देख नहीं सकते; वे केवल बुद्धि-गम्य है। परन्तु इससे जिसकी परीक्षा हो सके उसकी कुछ भी परीक्षा करने की जो वान (ग्रादत) पड़ गई है, वह बहुत बुरी है।

फिर स्वामी जी ने ग्रन्ध विश्वास से कैसे २ ग्रनर्थ होते हैं सो विदित कराने के लिये ग्रनेक रोचक दृष्टान्त दिये ग्रौर भर्तृहरि का एक सार्थ श्लोक कह कर बतलाया:—

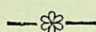
"भर्तृहरि कहते हैं कि जब मैं पिंगला के ग्राधीन हो गया ग्रर्थात् काम के वश हो गया तो मुझे ग्रन्धेरी रात में कोई वृद्ध मिल जाता तो वह भी मुझे स्त्री भान होता परन्तु ग्रब मुझे सब जगह ब्रह्म ही ब्रह्म दीखता है।" यदि ग्रापको प्रकृति का सौन्दर्य देखना हो तो ग्राप कालिदास के काव्य देखो। उन काव्यादिकों से "सत्य भावना किसमें रखनी" सो ग्रापको ज्ञात होगा। कीटपतंग के सदृश ग्रौर हमारे सदृश ग्रनेक हैं, परन्तु रामचन्द्र समान महानुभाव कम हुए हैं। फिर हमारे भाव विचित्र हों तो इसमें ग्राश्चर्य क्या ? जैसे सब के उच्चारण में भिन्नता होती है वैसे ही सबके मनोगत भावों में भी भेद होता है। पिता ग्रौर पति स्त्री को प्रेम से देखते हैं, परन्तु उनके भावों में ग्रन्तर होता है, इसका एक दृष्टान्त मैं दूंगा।

एक मांसाहारी ग्रफगान मुझे मिला। उसने मुझसे कहा कि "भला ऐसा कोई मनुष्य हो सकता है जो मांस न खाता हो ?"

मैंने कहा हां ! ऐसे कई मनुष्य हैं। इस पर उसने कहा अल्लाह ! अल्लाह !! कोई भी मनुष्य मांस न खाता हो क्या यह सम्भव है ? वस्तुतः बात तो यह है कि कई मनुष्य जब मांस को अमृत मानते हैं तब कई उसे मल से भी अधिक भ्रष्ट समझते हैं। त्यागी को यह सुनकर आश्चर्य होता है कि स्त्री मनचलित करने वाली है परन्तु दूसरी ओर विषयी की स्त्री से मन चलित नहीं होता। ऐसा सुनकर त्यागी के समान आश्चर्य होता है। संसार की विचित्रता इससे अधिक क्या हो सकती है ? भर्तृहरि जी कहते हैं कि "पतंग की दीपक में और मधुमक्षिका की गुड़ में मृत्यु होगी" यह बात न जानने से वे दीपकादि में गिरते हैं। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि मेरी मृत्यु होगी पर तो भी दूसरे का धन हरण करने में तत्पर रहता है। हिन्द के ब्राह्मण मरे हुए का भी धन लेते हैं, तो ऐसे समय में वास्तविक मार्ग कहां से मालूम हो। जादूगरी की बनावट असत्य है ऐसा जानते हुए भी लोग मार्ग में तमाशा देखने के लिये खड़े हो जाते हैं, मनुष्य कुछ ऐसे ही विचित्र तत्वों से भरा हुआ प्रत्येक क्षणभंगुर प्रवृत्ति में इसी उपमा के साथ फंसाता है इसी से स्वात्मा का सूक्ष्मता से ज्ञान नहीं हो सकता। कायदे कानून की सूक्ष्मता वकील लोग दिखलावेंगे, परन्तु उससे ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान मिलता नहीं है। कई थोड़ा बहुत प्रयत्न करके मि० ब्रेडलो की तरह छोड़ देते हैं। रोटी खाने से भूख मिटती है, उसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान के मिलने से मन की क्षुधा नष्ट हो, तब जानना कि सत्य ज्ञान हुआ। परन्तु वर्तमान समय में लोगों को वैसे सुअवसर प्राप्त नहीं होते। किन्तु वैसे आत्मिक और ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिये। आज का व्याख्यान आगे होने वाले व्याख्यानों की मानो भूमिका है इस वास्ते मैं अधिक न कहूंगा। परन्तु अन्त में संसार की विचित्रता से इतना ही ग्रहण करने की प्रार्थना करूंगा कि आप अन्धश्रद्धा न रखते हुए जो कुछ सिद्धान्त की परीक्षा हो अर्थात् जो कुछ सत्य ठहरे उसी को ग्रहण करेंगे।

[प्रमुख ने दर्शाया कि कई लोग जातिभोजनादि में बहुत धन व्यय

करते हैं, परन्तु स्वर्गवासी सेठ जेठाभाई ने अपने धन का अन्धपरम्परा में खर्च न करके सत्य धर्म के प्रचारार्थ खर्च करने की व्यवस्था की हैं, यह प्रशंसा की बात है। इत्यादि २।]



आर्य समाज क्या है ?

ता० १६ दिसम्बर १६०२

आर्य समाज के सम्बन्ध में कई द्वेषी, लोगों को बहका दिया करते हैं जिससे उससे अनभिज्ञ लोग समाज से दूर भागते हैं। आर्य समाज सम्बन्धी जो जो अच्छी बातें हैं, उनको छिपाकर उसे बदनाम करते हैं। स्वामी दयानन्द जी प्रथम संस्कृत में प्रचार करते थे, परन्तु उस समय अन्य मत वाले पण्डित उनके कथन का उल्टा अर्थ करके लोगों को समझाते थे। इससे उन्हें भी संस्कृत छोड़ कर हिन्दी में प्रचार करना पड़ा। इसी तरह आर्य समाज सम्बन्धी अन्याय होता हुआ देखकर आर्य समाज क्या है यह कहने की आवश्यकता है। कई लोग कहते हैं कि आर्य समाजी ईसाई जैसे हैं। दूसरी तरह के भी अनर्थ हुए हैं, उन्हें टालने की आवश्यकता है।

प्रत्येक प्रकार के प्राणियों का स्वभाव ऐसा है कि अपनी ज ति के अन्य प्राणियों के साथ मिलकर काम करना। जब पशुओं में ऐसे संस्कार देखे जाते हैं तब उससे उच्च पंक्ति धारण करने वाले मनुष्यों में ऐसे संस्कार हों इसमें आश्चर्य ही क्या ? एक मनुष्य की अपेक्षा यदि कई मनुष्य साथ मिलकर कार्य प्रारम्भ करें तो वह कार्य शीघ्र होता है, इसी तरह समाजी लोग मिलकर कार्य करें तो बहुत उत्तम कार्य कर सकते हैं। परन्तु जब उन्हीं समाजियों में विचार का स्थान विकार ले लेता है, तब उनकी अवस्था बहुत बुरी होती है इतिहासों में देखने से अच्छी तरह ज्ञात होगा कि भिन्न २ समाजों के नाश होने का कारण उनमें विचारों की जगह विकारों की अधिकता हो गई

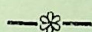
यही था। वर्तमान समय में जो आर्य समाज का स्थापन हुआ है; वह भी हिन्दू सोसायटी है और उसका नाम मैं आर्य समाज रक्खूंगा, क्योंकि हिन्दू शब्द संस्कृत नहीं किन्तु फारसी है, आजकल हिन्दू शब्द में भी विरोध चलता है और उसकी ओर सबका मन आकर्षित हो रहा है। सामाजिक दशा ऐसी बिगड़ी हुई है कि एक हिन्दू पर अन्याय होता हुआ देखकर भी दूसरा हिन्दू आंख कान बन्द करके चला जाता है। ऐसे कारणों से हमें उसे समाज कहते भी लज्जा आती है। क्योंकि समाज में एकता का अभाव है इससे जानवर (पशु) अच्छे हैं। एक समय मैं जंगल में भ्रमण कर रहा था उस समय मैंने एक बन्दर को वृक्ष के ऊपर चढ़ता देखा। वह आधे वृक्ष पर तो चढ़ गया, परन्तु आगे न जा सका पीछे जो उसने देखा तो एक दो कुत्ते पीछे लगे हुये थे। न वह ऊपर चढ़ सकता था और न नीचे उतर सकता था। उसने वहां किलकारना आरम्भ किया, उसकी आवाज सुनते ही दूसरे दस पांच बन्दर वहां आ पहुंचे और कुत्तों को भगा कर उन्होंने उस बन्दर को बचा लिया। ऐसी एकता प्राणियों में भी देखी जाती है, परन्तु मनुष्यों में इससे विपरीत ही दशा देखी जाती है। अन्तिम सात सौ वर्ष में सात कोटि हिन्दू मुसलमान हो गये, परन्तु उन्हें रोकने के लिये हिन्दुओं ने कुछ भी नहीं किया। अब भी दो सौ वर्ष में कितने ही हिन्दू ईसाई हो गये यह आप सब जानते हैं। तो भी रोकने का कुछ प्रयत्न न हुआ। इस प्रकार एकता-की न्यूनता से भारतको अत्यन्त हानि हुई। परन्तु इस हानिसे बचाने लिये स्वामी दयानन्द ने ही केवल अपना कर्तव्य बजाया है। वेद शास्त्रों के सम्बन्ध में जो जो अनर्थ उत्पन्न किये गये थे, उनकी पोल प्रकट करने में उन्होंने बहुत कष्ट उठाये और अपना यह अभीष्ट प्रसिद्ध करने के लिये आर्य समाजों की भी स्थापना की, आर्य समाजों को जो उच्च स्थिति में रखने का हेतु स्वामी दयानन्द जी का था वह अभी तक सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि कई हिन्दू उसमें निकम्मी हिन्दू उसमें निकम्मी न्यूनताओं को देख उससे लाभ उठाना नहीं जानते। आर्य समाजों की ओर से वेदों की आज्ञा के अनुसार ही काम किया

जाता है। यदि कोई सभासद वेद व आर्य समाज की आज्ञानुसार काम न करें तो उसमें समाज का दोष नहीं है, संसार की भिन्न २ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नाना प्रकार के समाजों की जरूरत है और इसी कारण भिन्न २ व्यापार करने वालों ने समाजें स्थापित की है। इस तरह समाजों के बढ़ जाने से जातिभेद उत्पन्न हुआ। देश में जो जो भिन्नतायें प्रकट हुई हैं उन्हें मिटाकर लोगों को वास्तविक सत्य मार्ग पर ले जाना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है।

आर्य समाज का प्रथमोद्देश्य यह है कि ईश्वर के सत्यस्वरूप को समझना कि वह सच्चिदानन्द स्वरूप निराकार है। स्वामी दयानन्द जी ने भी अपना यही प्रथम कर्तव्य माना था। यदि ईश्वर को निराकार के स्थान पर साकार माना जाय तो फिर उसके भी बनाने वाले की आवश्यकता है। कई ऐसा भी कहने को तैयार है कि ईश्वर अपने निराकार स्वरूप में साकार हुआ, परन्तु यह असम्भव है क्यों कि प्रत्येक पदार्थ में जो गुण होते हैं उससे विपरीत गुण उसमें रह नहीं सकते। कई ऐसा भी कहते हैं कि यदि ईश्वर निराकार है तो उसने जगत् व सूर्य इत्यादि को कैसे बनाया ? ईश्वर सर्वशक्तिमान् है ऐसा सब मानते हैं। वह सर्वशक्तिमान् है अतएव उसे किसी वस्तु को बनाने के लिये हाथ पैरों की आवश्यकता नहीं है। यदि पीसी हुई सूक्ष्म चीनी में बालू मिला दी जाय और किसी विद्वान् रसायन शास्त्री से चीनी तथा बालू को पृथक् २ करने को कहा जाय तो वह कर नहीं सकता. परन्तु एक पिपीलिका (चींटी) इनमें से चीनी निकाल कर खा जायगी इसका कारण यही है कि उसका मुख (मुंह) अति सूक्ष्म होने से वह चीनी को खा सकती है। इसी तरह से आप विचार कर देखोगे तो ज्ञात होगा कि दुनियां के सर्व स्थूल पदार्थों का मूल स्वरूप अति सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म स्वरूप को साकार तो नहीं पकड़ सकेगा। इसी प्रकार यदि ईश्वर साकार हो तो सूक्ष्म पदार्थों में से पृथ्वी सूर्य आदि को कैसे प्रकट कर सकता ? परन्तु वह सर्वशक्तिमान् होने से निराकार अवस्था में ही सब सृष्टि को बना सकता है ईश्वर

न्यायकारी और दयालु भी है। क्योंकि ईश्वर कभी अन्याय नहीं कर सकता। उसको न्यायी समझने में दयालु शब्द बहुतों को भ्रान्ति उत्पन्न करता है कि यदि वह दयालु हो तो पापियों को शिक्षा नहीं कर सकेगा। यदि वह योग्य शिक्षा करे तो वही दयालु कैसे माना जाय ? परन्तु वास्तविक बात यह है कि ईश्वर जो न्याय करता है, वह इस दुनियां के न्यायाधीश की तरह वेतन अर्थात् किसी फल को प्राप्त करने के लिये नहीं करता है, केवल निष्काम अर्थात् अपना कुछ भी स्वार्थ रखे बिना न्याय देता है। यही उसकी दया है। जैसे महात्मा वा सच्चे साधु अपना बुरा करने वाले बुरा चाहने वाले वा निन्दा करने वाले का भी भला ही चाहते हैं। उसी तरह से ईश्वर भी है। ईश्वर अजन्मा और अनन्त है इससे वह जन्म या अवतार नहीं ले सकता। इस तरह से ईश्वर के सत्य स्वरूप का जतलाना आर्य समाज का उद्देश्य है। अनर्थों को प्रगटकर सत्य अर्थों का प्रतिपादन न करना, वेद शास्त्रों का सत्यार्थ समझाना; उसका अभ्यास करना; आर्य समाज का दूसरा उद्देश्य है। पुराणों ने वेद सम्बन्धी बहुत अनर्थ किये हैं। इसलिये उनके सत्यार्थ समझाने की आवश्यकता है। आर्य समाज या हिन्दू समाज में कुछ भी फर्क नहीं है। भेद केवल इतना ही है कि, भारतवर्ष के सब धर्म जो वेदशास्त्रों का आधार रखते हैं उन वेदों का सत्यार्थ करके लोगों को समझाने का धर्म यदि कोई समाज समझता है तो वह केवल आर्य समाज ही है। वेदों के मन्त्रों के जो अनर्थ किये गये हैं उन्हें पकड़े कई पंडित व महात्मा अन्धे की तरह बैठे रहते हैं। परन्तु अपनी आंखें खोल सत्यार्थ जानने का प्रयत्न नहीं करते, आर्य समाजी बैठे नहीं रहते। वे वेद का गुप्त रहस्य देखते हैं और उसका प्रचार करते हैं। आर्य समाज मानता है कि, वेद सत्य है और उसका (पढ़ना) अभ्यास करना हमारा परम धर्म है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद के जो जो अर्थ किये उसकी परीक्षा करके आर्य समाज ने उन २ अर्थों को ग्रहण किया है। और दूसरों को समझाने के लिए तैयार है। और वे यदि असत्य हों तो छोड़ने के लिये उद्यत है।" स्वामी जी ने

दृष्टान्तों से आर्य समाज के अन्य हेतुओं पर भी विवेचन किया था। आर्य सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझता है। इस विषय पर व्याख्यान देते हुये कहा कि इसका अर्थ कि स्वार्थ को छोड़ सब की भलाई में मन लगाना है। मनुष्य को अपनी उन्नति से ही सन्तुष्ट न होना चाहिये. परन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। मैं जब तक आर्य समाजी न था उसको बुरा मानता था। परन्तु सद्भाग्य से मैं जब उसका रहस्य समझा तब ज्ञात हुआ कि आर्य समाज केवल सत्यका ही प्रचार करना चाहता है और उसमें किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं है। अन्त में मैं यही चाहता हूँ कि आप भी इस समाज के हेतुओं का रहस्य समझ लो और जब आपको विश्वास हो जाय कि समाज शुभ कर्म करने के लिये स्थापन किया गया है तो अवश्य उसकी तन, मन, धन से सहायता करो और यह भी ध्यान में रक्खो कि कुछ भी देखे बिना निन्दा न करना। व्याख्यान समाप्त होने पर प्रधान ने विवेचन किया और स्वर्गवासी जेठाभाई के पिता आज की सभा में उपस्थित थे उन्हें धन्यवाद दिया गया।



"ईश्वरावतार"

ता० १८। १२। १९०२

आरम्भ में समाज के प्रमुख मि० जगजीवनदास जी की प्रार्थना से वैद्य शास्त्री मणिशंकर गोविन्द जी ने कुछ विवेचन किया। उन्होंने कहा कि बम्बई में अनेक प्रकार के उपदेशक अन्यान्य कारणों से आकर अज्ञानी लोगों को बहकाते हैं और इसलिये शोक प्रदर्शित किया। प्रमुख स्थान वेद प्रचारिणी सभा के पण्डित श्रीमान्-बालकृष्ण जी को दिया था। स्वामी जी ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ करते कहा कि मुझे अवतार से वा आर्य समाज से द्वेष नहीं है।

आर्य समाज जो सिद्धान्त मानता है वह केवल स्वार्थ के लिये नहीं परन्तु परोपकार के लिये मानता है। जो कोई आर्य समाजी बनता है उसको अरथोडाक्स गाली देते हैं। समाज के सभासद् होने से उसको अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं परन्तु सत्य का महात्म्य विलक्षण है। जो निरपराधी हैं उसको सैकड़ों मनुष्य अपराधी कहने पर वे डरते नहीं हैं। और जो वास्तविक अपराधी है यदि उसे सैकड़ों मनुष्य निरपराधी भी कहें परन्तु उसका अन्त:करण नहीं मानता तारीफ या निन्दा से। थरमामेटर का पारा जैसे जाड़ा या गर्मी से ऊपर नीचे जाता है आर्य समाजियों को भी उसी तरह उत्साह रहित न होना चाहिये। सत्य का प्रचार करते समय अखबार वाले वा लोग कुछ भी कहें उनकी परवाह न करके अपना काम करते रहना चाहिये। अन्त में सत्य की जय होगी। राम या कृष्ण के साथ मुझे द्वेष नहीं है, प्रत्युत उन्हें मैं आदर की दृष्टि से देखता हूँ और राम या कृष्ण को खुद ईश्वर मानने वालों की अपेक्षा मैं कृष्ण को अनेक सद्गुण युक्त मानता हूँ।

इस संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय की कर्त्री जो महती शक्ति है वह परमात्मा है। उसका प्रत्यक्ष ज्ञानयोगियों को ही होता है और लौकिक विद्वानों को उसका अनुमान से ज्ञान होता है। शास्त्राभ्यास करने वालों को उसका शाब्दिक ज्ञान होता है। वर्तमान समय में जो ईश्वर प्राप्त करने के साधन दिखलाये जाते हैं वे वेदवेदांत से विरुद्ध हैं। वर्तमान समय में मूर्ति पूजा ईश्वर प्राप्ति का प्रथम साधन माना जाता है और मुझे मूर्तियों के साथ कुछ राग द्वेष नहीं है। क्योंकि मूर्तियों ने आज तक मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं किया है। आर्य समाज मूर्तिपूजा का खण्डन करता है, इस कारण उससे कई लोग दूर रहते हैं। वस्तुत: मूर्तिपूजा का खण्डन आर्य समाज नहीं परन्तु मूर्तिपूजक स्वयं ही करते हैं। दिवाली के दिनों में मूर्ति को स्वच्छ करने के लिये खटाई इत्यादि से रगड़ २ कर साफ करते हैं और ऐसा करते समय मूर्ति टूट भी जाती है। आर्य समाजी

मूर्ति को छूते तक नहीं तो फिर वे खण्डन करते हैं ऐसा क्यों कहा जाय ? आर्य समाजियों ने कभी एक भी मूर्ति तोड़ी नहीं है, मूर्ति का वास्तविक खण्डन तो उसके पुजारी ही करते हैं। ईश्वर प्राप्त करने का साधन मूर्तिपूजा नहीं किन्तु ज्ञान और श्रवण है। वेद में ईश्वर को नित्य, अजन्मा और अनामय कहा है। स्वामी जी ने यहां अनेक प्रमाण वेद के दिये थे और ईश्वर का अवतार हो नहीं सकता ऐसा सिद्ध किया था। ब्रह्म की सर्वव्यापकता के लिये एक ही उपमा है और वह आकाश है। अब जो पोल में आकाश है वह क्या यहां से दूर जा सकेगा ? वेद पर सब से अधिक आक्षेप करने वाले जैन हैं। वे कहते हैं कि, जब तुम ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हो तो वह चल फिर सकता है वा नहीं ? यदि नहीं चल सकता तो क्रिया कैसे कर सकता होगा। मैं उनको उत्तर दूंगा कि वस्तुतः ईश्वर में क्रिया नहीं है, परन्तु जैसे आकर्षण शक्ति अपने निज रूप में रहते हुये भी असर करती है, उसी तरह से ईश्वर भी असर करता है। विष्णु के चार हाथ हैं वे वैकुण्ठ में रहते हैं। उनको स्त्री का नाम लक्ष्मी है तथा जय और विजय नाम के द्वारपाल हैं। यह सब पौराणिक बातें आप सब जानते हो, इसलिये कहने की जरूरत नहीं है। यदि अमेरिका में मैं व्याख्यान देता तो मुझे ये बातें विस्तार से कहनी पड़ती। ऐसा कहने का भावार्थ यह है कि अवतार मानने वाले भगवान् को एक स्थान में बैठा हुआ मानते हैं। अवतार शब्द 'तृ' धातु से निकला है और अव उपसर्ग से उसका अर्थ उतरने वाला होता है। अब जो ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं वे उसको ऊपर से उतर कर देवकी के गर्भ में गया ऐसा कभी नहीं मानेंगे। क्योंकि उतर वही सकता है, जो नीचे को न हो। चारों वेदों में अवतार शब्द तक नहीं है।

मैंने चारों वेद ध्यान से देखे हैं, उनमें ईश्वर के अवतारों के लिये एक शब्द भी नहीं है। ज्यादा क्या कहा जाय ? कई हिन्दू कहते हैं कि तुम स्त्री को ग्यारह पति करने के लिये कहते हो परन्तु यह

हमारा कथन नहीं है। पुराण में विद्या देवी ने २१ पुनर्लग्न किया ऐसा लिखा है। युधिष्ठिर ने अनेक पति होने के दृष्टान्त द्रोपद राजा को सुनाये थे। द्रोपदी के पांच पति थे। तब शास्त्रों को छिपाकर आर्य समाज को नियोग के असत्य अर्थ करने वाला कहना क्या दुष्कर्म नहीं है? पुराण में यह कथा है कि पृथ्वी पर राक्षसों ने देवों को अति कष्ट दिया है जिससे वे विष्णु के पास गये और पृथ्वी ने गौ का रूप धारण किया। उसकी प्रार्थना सुन विष्णु ने अपनी मूंछ के दो बाल दिये जिनमें एक काला था और दूसरा श्वेत। काला बाल देवकी के गर्भ में गया और उसमें कृष्ण उत्पन्न हुये और श्वेत बाल से बलभद्र हुये। यही बात अनेक पुराणों में है। उनमें कहा है कि, कृष्ण विष्णु की मूंछ के काले बाल का अवतार है। परन्तु पीछे से उसे चन्द्र की सोलह कला का अवतार कहा है। यह आपस में कैसा विरोध है! भागवत की योग्यता इससे जाती रहती है। कई अवतार को गवर्नर जनरल की उपमा देते हुये कहते हैं कि जैसे गवर्नर जनरल जेल में जाता है और कैदी भी जेल में जाते हैं वैसे ईश्वर भी तब स्वेच्छा से कैदी की भलाई के लिये कारागृह में जाता है जब कि जीव देहरूपी बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता, अब जन्म की थ्यूरी में हिन्दू क्या मानते हैं। कर्म के अनुसार उत्तम और निकृष्ट शरीर न्यायी ईश्वर देता है। वेदान्त का ऐसा अपूर्व दृढ़ सिद्धान्त है कि कर्म के बिना जन्म होता ही नहीं। तब ईश्वर ने क्या कर्म किया कि उसको जन्म धारण करने की जरूरत हुई। अपने कर्म से जो कारागृह में पड़ता है वह अपनी इच्छा से बाहर नहीं निकल सकता। राम स्वयं ही अपने कर्म के लिये क्या कहते हैं। स्वामी जी ने रामायण के श्लोकों के अर्थ दिखला के कहा कि जब लंका में लक्ष्मण मूर्छित हुये और हनुमान औषधि लेने गये थे, उस समय श्री रामचन्द्र जी अपने मूर्छित भ्राता का शरीर गोद में लेकर विलाप करते हुए कहते हैं कि हे देव! मैंने पूर्व जन्म में बहुत अपराध किये हैं, जिससे ऐसे दुःख उठाने पड़ते हैं इत्यादि। यह बात वाल्मीकि ने लिखी है। उत्तर हिन्दुस्तान में तुलसी कृत रामायण

का प्रचार अधिक है और कईयों का पाण्डित्य उसमें ही समाप्त हो जाता है। उसमे भी राम कहते हैं कि मेरे कर्मों का फल कोई भी मिथ्या नहीं कर सकता। इससे सिद्ध होता है कि गवर्नर जनरल स्वेच्छा से जेल में जाते हैं। रामादि स्वेच्छा से देहरूपी बन्धन में नहीं गये थे। परन्तु जो कैदी की तरह कारागृह में जाते हैं, कैदी के कपड़े पहिनते हैं और काम भी करते हैं। राम और कृष्ण ने भी दुनियां में जन्म पाकर कैदी रूप मनुष्य की तरह वर्ताव किया है तो फिर उनको गवर्नर जनरल की उपमा देना मिथ्या है। क्या गवर्नर जनरल कैदी के कपड़े पहिनते हैं ? क्या कैदी का काम करते हैं ? इससे सिद्ध होता है कि, यह दृष्टान्त भ्रमयुक्त है अतएव धोखा देने वाला है यह संसार बन्धन है ऐसा कहना भी उतना ही हानि कारक है।

वैष्णव भक्त कहते हैं कि वेदों से गीता श्रेष्ठ है, परन्तु स्वयं शंकर और कृष्ण भी वेद को श्रेष्ठ समझते हैं। अब गीता और वेद में विरोध हो तो गीता का प्रमाण असत्य और वेद का सत्य ही मानना पड़ेगा। गीता में सब मनतव्य हैं। रामानुज, वैष्णव, शैव्य, द्वैत, अद्वैत- भक्ति, ज्ञान सब का उसमें थोड़ा २ प्रतिपादन है। गीता एक खिचड़ी है। एक समय एक गवैया मूसल कपड़े में लपेट एक राजा के पास गया। और कपड़े में छिपाया हुआ मूसल दिखा कर कहने लगा कि यह संयुक्त बाजा है। यह अन्यान्य प्रकार के बाजों के साथ ही बजता है। राजाने गवैयों को बुलाया, तब वह नया गवैया भी मूसल को अंगुलियां लगाकर बजाता हो ऐसा स्वांग करने लगा। राजा ने कहा अब उसको बजाने दो। तब गवैया ने कहा कि यह तो संयुक्त बाजा है, अकेला नहीं बजेगा। यह साथ ही बजता है। चाहे आप बजा देखें। इसी तरह से गीता का भी है। गीता का प्रमाण स्वयं कुछ प्रतिपादन नहीं करता, परन्तु दूसरे के साथ जैसा चाहो, वैसा बजा लो। मैं इसमें गीता का कोई दोष है ऐसा नहीं कहता, परन्तु वह स्वतः प्रमाण नहीं मानी जाती। "यदा यदा हि धर्मस्य" इत्यादि जो श्लोक हैं, वह वेदान्त दृष्टि से ठीक है। वेदान्त के अनुसार सब पदार्थ

ब्रह्म है। तो पीछे कृष्ण ने क्या पाप किया कि वह ब्रह्म नहीं ? इस श्लोक का ऐसा अर्थ होता है कि, कृष्ण मुक्तात्मा योगी होने से अपनी इच्छा के अनुसार जन्म पाने को कहते हैं। मुक्तात्मा योगी ईश्वर की ओर से ईश्वर की तरह ही उपदेश कर सकते हैं ऐसा भी कह सकते हैं परन्तु कृष्ण स्वयं अपने आपको ईश्वर कहें, ऐसे अज्ञानी हों यह असम्भव है। फिर ईश्वर के २४ अवतार कहे हैं। क्या वे सब भारत में ही हुये ? अन्य देशों में अवतार क्यों न हुये ? उन देशो ने क्या पाप किये। भारत में प्राचीन समय में अवतार हुये, अब क्यों नहीं होते हैं ? जब अधर्म बहुत होता है तब धर्म का स्थापन करने के लिये अवतार होते हैं ऐसा कहा जाता है। वर्तमान समय में युधिष्ठिर इत्यादि के समय से दुःख अधिक है। एक गाय भी मरती न थी तो भी उस समय अनेक अवतार हुए और वर्तमान समय में जब कि लाखों गायें मारी जाती हैं तब ईश्वर अवतार क्यों नहीं लेता ? भागवतकर्ताने ईश्वर के कृष्ण अवतार पर अनेक कलंक लगाये हैं। उसने मक्खन की चोरी की ऐसा कह कर फिर उनको महात्मा कहना यह ऐसा है कि मानो हमारे गुरु थोड़ी शराब पीते हैं ऐसा कबूल करना और कहना कि वे एक बोतल पीते हैं परन्तु नशा नहीं चढ़ता। ऐसी दलील देकर फिर उसे महात्मा कहनेके समान है। कृष्ण पर महाभारत में दोषारोपण किया है। मृत्युवश पड़े हुये दुर्योधन को मरा हुआ जानकर कृष्ण ने उस पर पैर रख "दुष्ट मर गया है ऐसा कह कर जाते हैं।" उतने में दुर्योधन सचेत होकर कहता है "मैं दुष्ट हूँ वा तू दुष्ट है यह सुन" ऐसा कह कर कृष्ण की दुष्टता सुनाता है। यह सुन कर कृष्ण लज्जित हुए और दुर्योधन पर देवों ने पुष्प वृष्टि की। महाभारत में कृष्ण के ऊपर थोड़े बहुत सच्चे झूठे दोष लगाये हैं परन्तु भागवतकर्ताने कुछ भी कमी नहीं रक्खी। रामचन्द्र के ऊपर तो तीन कलंक हैं। मेरे मन्तव्यानुसार कृष्ण और रामचन्द्र की अपेक्षा भरत अधिक धार्मिक थे। क्यों कि उनपर किसी ने कलंक नहीं लगाया।

मेरा अपना विचार ऐसा है कि कृष्ण महात्मा प्रथम श्रेणी के राजद्वारी (डेप्लोमैट) थे और वे ग्लेडस्टन और प्रिन्सबिस्मार्क

को अपने पाकेट में रक्खें ऐसे थे। परन्तु उनमें राजद्वारी ही कुशलता केवल न थी वे विद्वान् भी ऐसे ही थे। वे वास्तविक श्रेष्ठ थे। वे अर्जुन को कहते हैं कि, जिस तरह से मैं करता हूँ, उसी तरह से अन्य भी करें इसलिये मुझे सच्चा वर्ताव करना चाहिये। कृष्ण के ही युक्त कथनों से सिद्ध होता है कि वे रासलीला तथा गोपलीला जैसी क्रिया करने वाले नहीं थे। वे योगी थे। जो रसिक हैं और व्यभिचार को चाहते हैं उन्होंने कृष्ण के ऊपर आक्षेप रक्खें हैं। जो शराब पीना चाहते हैं वे देवी के नाम से पीते हैं। यह एक शराब पीने की और देवों के नाम से अपने आप को निर्दोष ठहराने की दुष्ट युक्ति है। कृष्ण के ईश्वर होने से उन्हें अनेक स्त्री भोक्तृत्व दोष नहीं लगता है ऐसा कहना बुद्धिमान् योग्य नहीं समझेंगे। यदि माना जाय कि योग्य है तो भी उससे वे अपराधी हुये। कृष्ण राम इत्यादि महात्मा थे। उनको ईश्वर मानने वाले ईश्वर के गुण जानते नहीं हैं। यदि राम ने रावण को ही मारने के लिये अवतार लिया हो तो रावण को मारकर फिर क्यों रहे? रावण को मारने के लिये जन्म धारण की क्या आवश्यकता थी? क्या वे रावण में व्यापक न थे? क्या रावण को एक क्षण में मारने की उनमें शक्ति न थी? अवतार के नाम से उन पर अनेक दोष लगाये हैं। पुराण में अवतारों की विचित्र बातों का वर्णन बहुत है। समय हो गया है इसलिये मैं अन्त में यही कहूँगा कि ईश्वर शरीर रहित निराकार, सर्वव्यापक, नित्य, सर्वशक्तिमान् और अजन्मा है। उसने मनुष्य, पशु, मछली इत्यादि का अवतार लिया ऐसा कहना उस परमात्मा के महान् गुणों को भूल जाना है, प्रत्यक्ष युक्ति और माण से विरुद्ध है इसलिये मैं आशा करता हूँ कि आप किसी मनुष्य को ईश्वर के बदले में न पूजेंगे और उस निराकार परमात्मा को ही ज्ञानपूर्वक भक्ति से पूजेंगे।

—:※:—

मूर्तिपूजा वैदिक तथा युक्तिसिद्ध नहीं

[स्वामी श्री नित्यानन्द जी ने इस विषय पर एक प्रभावशाली तथा प्रमाणों से भरा हुआ व्याख्यान दिया था। उस समय प्रधान का स्थान जस्टिस चन्दावरकर को दिया गया था। श्रोताओं से हाल बिल्कुल भरा हुआ था]

आरम्भ में स्वामी जी ने कहा मेरा आज का विषय आप लोगों को विज्ञापन द्वारा जतला दिया गया है। इस विषय पर कुछ कहने से पहले मनुष्य किसको कहते हैं" सो हमको जानना चाहिये "मत्वाकर्माणि सीव्यति इति मनुष्यः" विचार करके बुद्धिपूर्वक जो कोई करे उसको मनुष्य कहते हैं। इस व्याख्या के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को धर्म के कार्यों में शान्ति तथा बुद्धिपूर्वक हरेक विषय पर ध्यान देना चाहिये। परन्तु लोग इस विषय में आजकल जितनी गड़बड़ करते हैं उतनी किसी साधारण विषय में भी नहीं करते "जानस्टुअर्टमिल" चार प्रकार के मनुष्य बतलाते हैं (१) अपने मन्तव्य विरुद्ध कोई कुछ कहे तो उसको तुरन्त मारने के खड़े होने वाले। (२) अपने मन्तव्य विरुद्ध कुछ सुन कर भागने वाले। (३) अपने मन्तव्य विरुद्ध सुन कर वादविवाद करने के लिये खड़े होने वाले (४) अपने मन्तव्य विरुद्ध सूनकर शान्ति पूर्वक उस पर विचार करने वाले। इनमें से चतुर्थ पंक्ति के मनुष्य श्रेष्ठ कहलाते हैं। इसलिए मैं आपसे विनती करता हूँ कि, आज का विषय आप लोग रागद्वेष छोड़कर सुनें क्योंकि जहां रागद्वेष तथा आग्रह रहते हैं वहां से धर्म हजारों कोस दूर रहता है। इसलिए यदि जो कुछ अपने को ठीक न जान पड़े तो प्रमुख की आज्ञानुसार निर्भय होकर बोलना चाहिये। मुझे शोक के साथ कहना पड़ता है कि यह विषय ऐसा है कि इसका जैसा जंगली मसला और कोई न होगा। क्योंकि हमारे पूर्वजों को यह ख्याल न था कि, भविष्यत् में हमारी सन्तति ऐसी गंवार होगी कि ईश्वर के स्थान में पत्थर, घास आदि पदार्थों को पूजने लगेगी। यदि आप वेद तथा उपनिषदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ें तो मालूम

होगा कि कहां तो पूर्वजों का निराकार ब्रह्म का ज्ञान और कहां मूर्तिपूजा ?

इस विषय को समझाने के लिये मैं आपको एक दृष्टान्त दूंगा। एक पत्थर ले कर उसके टुकड़े करो। एक टुकड़े का फूल बनाओ। दूसरे का चूहा और तीसरे की गाय बनाओ। पत्थर के फूल के पास एक सच्चा फूल रक्खो। और फिर देखो कि उड़ता हुआ भ्रमर आकर सच्चे फूल पर बैठता है या पत्थर के फूल पर? मैं निश्चिय करके कहता हूँ कि वह सच्चे फूल पर ही आकर बैठेगा। वैसे ही बिल्ली सच्चे चूहे पर झपटे मारेगी और पत्थर की गाय भी दूध न देगी। यद्यपि ये पदार्थ हम लोगों के रोज के देखे हुए हैं और ये बनावट में भी उनके जैसे बनी हैं तो भी वे सच्चे पदार्थों जैसे हमारा काम नहीं देते तथा पशु आदि को भी सच्ची वस्तु को पहिचान लेने की तथा उस पर वैठने और उससे उपयोग लेने की बुद्धि होती है। हम लोगों की बुद्धि ऐसी मारी गई है कि, सत्य क्या है तथा असत्य क्या है सो भी हमको मालूम नहीं होता। वास्तव में मेरा आक्षेप उन पर नहीं है कि जिनको सत्यासत्य का ज्ञान नहीं है परन्तु आक्षेप उन पर है कि जो जानते हैं कि सत्य क्या है और असत्य क्या है तो भी अपने आत्मा के विरुद्ध बर्ताव करते हैं। उनको मैं तो क्या परन्तु हमारे पूर्वज भी आत्महत्यारे कहे गये हैं। जब ऊपर कहे पत्थर के पदार्थ सच्चे पदार्थों की तरह हमारा काम नहीं देते हैं तो ईश्वर की मूर्ति तो किस प्रकार हमको लाभ पहुँचा सकती है!

अब हम विचार करेंगे कि ईश्वर की मूर्ति हो सकती है या नहीं। कोई फोटोग्राफर कहे कि मुझे हवा का फोटो लेना है अथवा मन का फोटो लेना है तो वह कदापि नहीं ले सकता। जिस चीज की मूर्ति हम बनाना चाहते हैं नो हम को जानना चाहिये कि वह वस्तु क्या है तथा हमारे पूर्वज भी वेदादि सत्यशास्त्रों के समय से महाभारत तथा तत्पश्चात् श्रीमच्छंकराचार्य के समय तक कैसे मानते थे और उसके पीछे लोग कैसे मानने लगे यह देखना उचित है। ईश्वर के विषय में आजकल चार मत हैं। (१) साकारवाद (२) निराकरवाद

(३) साकार निराकार (४) निराकार है परन्तु साकार हो जाता है। परन्तु अब देखना चाहिये कि इस विषय में वेद, उपनिषद् शास्त्र और युक्ति क्या कहती है। वेद और उपनिषदों में दो प्रकार के मन्त्र हैं एक तो साकार समझाने वाले दूसरे निराकार समझाने वाले। यह मत कितने ही आदमियों का है जैसे "सहस्रशीर्षा" इत्यादि उस पुरुष के सहस्र सिर हैं। सहस्र आंखें तथा सहस्र पग हैं। और वह परमेश्वर भूमि तथा सब ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके दश अंगुल (संख्या को) भी उल्लंघन करके वर्तमान हैं। परन्तु ऐसा अर्थ करने वालों से पूछना चाहिए कि जो ईश्वर के हजार सिर हों तो दो हजार आंखें होनी चाहिये और पग हाथ भी दो दो हजार होने चाहिये। आगे का आधा मन्त्र कहता है कि वह परमात्मा सब जगह व्यापक है। अब विचारने का स्थान है कि जो ईश्वर को हजार शिर वाला साकार मानें तो तो जहां शिर होंगे वहां पैर न होंगे जहां पैर होंगे वहां हाथ न होंगे तो सर्वव्यापक न रह सकेगा। इस मन्त्रका अर्थ प्राचीन भाष्यकार महीधर जिसको सनातनी लोग प्रमाण मानते हैं इस प्रकार करते हैं:—

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳसर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥१॥

॥ य० ३१ मं० १ ॥

महीधरभाष्यम्

अव्यक्तमहदादिविलक्षणश्चेतनो यः पुरुषः पुरुषान्नपरं किञ्चिदित्यादि श्रुतिषु प्रसिद्धः सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराजाख्योऽस्ति। कीदृशः सहस्रशीर्षा, सहस्रशब्दो बहुत्ववाची। संख्यावाचकत्वे सहस्राक्ष इति विरोधः स्यान्नेत्रसहस्रद्वयेन च भाव्यम्। ततः सहस्रमसंख्यानि शीर्षाणि शिरांसि यस्य सः शिरोग्रहणं सर्वावयवोपलक्षणम्। यानि प्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात् तस्यैवेतिसहस्रशीर्षत्वम्। एवमग्रेपि। सहस्राक्षः सहस्रमक्षीणि यस्य सः। अक्षिग्रहणं सर्वज्ञानेन्द्रियोपलक्षकम्। सहस्रं पादा यस्य सः। पादग्रहणं सर्वकर्मेन्द्रियोपलक्षकम्। सः पुरुषो भूमिं ब्रह्माण्डलोकरूपां सर्वतः तिर्यक्ऊर्ध्वमधश्च स्पृत्वा व्याप्य दशांगुल-

परिमितं देशमध्यतिष्ठत् अतिक्रम्यावस्थितः। दशांगुलमित्युपलक्षणं ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वतोव्याप्यावस्थित इत्यर्थः। इत्यादि—

भावार्थः—अव्यक्त महत् आदि विलक्षण विशेषणों से युक्त जो चेतन पुरुष है उससे परे कुछ नहीं है यह श्रुति में प्रसिद्ध है। ऐसा पुरुष जो सब प्राणियों के समष्टिरूप ब्रह्माण्ड देहवाला है, उसको विराट् कहते हैं। उसी का वर्णन इस सूक्त में है। उस पुरुष को सहस्र-शीर्षा कहते हैं। इस जगह सहस्र शब्द बहुत्ववाचक है, जो संख्या-वाचक लेवें तो आगे सहस्राक्ष शब्द आया है, इससे मन्त्र में वदतोव्या-घात (परस्पर विरुद्ध) दोष आता है, **क्योंकि जो** हजार सिर हों तो दो हजार आंखें होनी चाहिये इसलिये जिसमें सब प्राणियों के सिर रहते हों वही सहस्रशीर्षा। सब प्राणि मात्र उससे व्याप्य रूप सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये उनके अनेक सिर उसी के शिरों के समान वर्णन किये गये हैं। इसी प्रकार आगे के सहस्राक्षआदि शब्दों के विषय में भी समझना चाहिये (सहस्राक्षः) जिसके अनेक आंखें हों, आंख के ग्रहण से सब इन्द्रियों का ग्रहण होता है। (सहस्रपात्) जिसके असंख्य पैर हैं पात ग्रहण करने से गति (Motion) का ग्रहण होता है। वह पुरुष (पुरि—संसारे शेते इति पुरुषः) (परमात्मा) ब्रह्माण्ड में सब जगह ऊपर नीचे आदि चारों तरफ व्याप्त होकर दशांगुल परिमित देश को भी उल्लंघन किये हुये हैं अर्थात् ब्रह्माण्ड में बाहर भीतर सब जगह व्यापक है। इसी प्रकार पुरुष सूक्त के तीसरे मन्त्र में भी पादशब्द आया है। पाद् शब्द आने से स्वार्थी लोग विचारे भोले लोगों को उलटा सीधा समझाते हैं। यथाः—

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ २॥
यजु० अ० ३१ मं० ३॥

महीधरभाष्यम्

अतीतानागतवर्तमानकालसम्बद्धं जगद्यावदस्ति एतावान् सर्वोपि अस्य पुरुषस्य महिमा स्वकीयसामर्थ्यं विशेषो विभूतिः न तु वास्तवं

स्वरूपम् । वास्तवपुरुषस्तु अतः अस्मात् महिम्ना जगज्जालात् ज्यायांश्च अतिशयेनाधिकः एतदुभयं स्पष्टीक्रियते । अस्य पुरुषस्य विश्वा सर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि पादश्चतुर्थांशः अस्य पुरुषस्यावशिष्टं त्रिपात् स्वरूपम् अमृतं विनाशरहितं तत् दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशे स्वरूपेऽवतिष्ठत इति शेषः । यद्यपि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्याम्नायात् तस्य परब्रह्मणः इयत्ताया—अभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यम् तथापि जगदिदं ब्रह्मरूपापेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्वात् पादोपन्यासः ।

भावार्थः—यह जो पूर्व मन्त्र में कहा है सो सब परमात्मा की महिमा है। परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप तो इससे भी महान् है। आगे इसका स्पष्टीकरण है कि यह त्रिकालाबाधित जगत् तो इस परमपुरुष का चतुर्थांश मात्र है। इस पुरुष के बाकी तीन पाद उसी के रूप में हैं। यद्यपि सत्यज्ञान मय तथा अनन्तश्रुति प्रतिपादित ब्रह्म की इयत्ता—हद्द—नहीं बांधी जा सकती इसलिये पादचतुष्टय का निरूपण करना अशक्य है। तो भी यह जगत् ब्रह्म की अपेक्षा से अल्प है। ऐसा कहने की इच्छा से पाद का अलंकार रूप से वर्णन किया है।

जब परमात्मा पृथिवी आदि तत्वों से भी परे तथा व्यापक है तो फिर साकार कैसे हो सकता है जब सनातन धर्म वालों के नाममात्र भाष्याकार ईश्वर को साफ शब्दों में निराकार ठहराते हैं तो आधुनिक पोथाधारी उसको तोड़ मरोड़ कर साकार ठहराने का यत्न करते हैं। यह भी एक जमाने की खूबी है। ये लोग ऐसा भी मानते हैं कि वेद ईश्वर ने रचे हैं तो क्या ईश्वर ऐसा मूर्ख था कि एक जगह अपने आपको साकार कहे और दूसरी जगह निराकार कहे ! यह तो प्रमत्तगीत हुआ। सनातनधर्मी ईश्वर को भी "अपने समान" बनाना चाहते हैं। एक दूसरा मन्त्र यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में आया है उसका प्रमाण देकर ये लोग ईश्वर का शरीर ठहराना चाहते हैं। वह मन्त्र यह है:—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥ ई० पृ०—८ शंकरभाष्यम् ॥

योऽयमतीतर्मन्त्रैरुक्त आत्मा स स्वेन रूपेण किंलक्षण इत्याहायं मन्त्रः। सपर्यगात् स यथोक्त आत्मा पर्यगात् परिसमन्तादगादगतवानाकाशवद्व्यापीत्यर्थः। शुक्रम शुद्धम् ज्योतिष्मद्दीप्तिमान् इत्यर्थः। अकायमशरीरी लिङ्गशरीरवर्जित इत्यर्थ। अव्रणं अक्षतं। अस्नाविरं स्नावा शिरा यस्मिन्न विद्यन्त इत्यस्नाविरम्। अव्रणमस्नाविरमित्याभ्याँ स्थूलशरीरप्रतिषेधः शुद्धं निर्मलम् विद्यामलरहितमिति कारणशरीर प्रतिषेधः। अपापविद्धं धर्माधर्मादिपापवर्जितम् शुक्रमित्यादीनि वचांसि पुल्लिङ्गत्वेन परिणेयानि।

यह भाष्य पूने की आनन्दाश्रम ग्रन्थमाला में छपी ईशोपनिषद् के शंकर भाष्य में से लिया है।

भावार्थः—पहिले के मन्त्रों में जो आत्मा का वर्णन किया है वह कैसा है सो इस मन्त्र में दिखाया है। यथोक्त आत्मा सर्वव्यापक है। शुद्ध अर्थात् ज्योतिष्मान् अथवा दीप्तिमान् स्वयं प्रकाश है। अकायम् अर्थात् शरीर रहित है। आचार्य अकाय शब्द से लिंग शरीर का प्रतिषेध करते हैं। अव्रण अर्थात् शरीर के सब छिद्रों से रहित तथा नाड़ी नस के बन्धन में न आने वाले—अव्रण तथा अस्नाविर इन दो शब्दों से स्थूल शरीर का प्रतिषेध किया है। शुद्ध अर्थात् अविद्यादि दोषों से रहित है। शुद्ध शब्द से कारण शरीर का प्रतिषेध किया है। वह परमात्मा पाप अर्थात् धर्म और अधर्मादि के पापों से रहित है। इत्यादि इस प्रकार अर्थ करके जब भगवान् शंकर उबटाचार्य, ब्रह्मानन्द सरस्वती, शंकरानन्द, पण्डित रामचन्द्र आनन्द चट्टोपाध्याय तथा अनन्ताचार्य ये टीकाकार ईश्वर के तीनों प्रकार के शरीरां का निषेध करते हैं तो हमारे सनातनियों कों न जाने क्यों भ्रम हुआ जो मानने लगे कि ईश्वर का शरीर अलौकिक है। व्यास जी के वेदान्त सूत्र पर शंकराचार्य जी लिखते हैं कि:—

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ।

वे० सू० अध्याय २, पाद २, सू० ४०,

शंकरभाष्यम् ।

अथ लोकदर्शनानुसारेणेश्वरस्यापि किंचित् करणानामायतनं शरीरं कामेन कल्प्येत, एवमपि नोपपद्यते । स शरीरत्वे हि सति संसारिवद्भोगादि प्रसंगादीश्वरस्याप्यनीश्वरत्वं प्रसज्जयेत ॥

भावार्थः—लोगों की तरह ईश्वर का शरीर बनावें तो वह भी नहीं बन सकता है क्योंकि जो ईश्वर का शरीर माने तो भूख प्यासादि लगेंगे इससे उसका ईश्वरत्व ही नहीं रहेगा । इसलिये उस परमात्मा का शरीर नहीं होता है ।

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि ॥

वे० स० अ० ३ पा० २ सू० ११ ॥

शंकरभाष्यम्

तत्रोभयलिंगाश्रेत्यनुग्रहात् उभयलिंगमेव ब्रह्मेत्येवं प्राप्ते ब्रूमः । न तावत् स्वत एव परस्य ब्रह्मणः उभयलिंगत्वमुपद्यते । नह्येकं वस्तु स्वत एव रूपादिविशेषोपेतं तद्विपरीतञ्चेत्यवधारयितुं शक्यं विरोधात् ।

भावार्थ—श्रुति ब्रह्म को साकार निराकाररूप से वर्णन करती है। इसलिये कोई कहे कि परमात्मा दोनों प्रकार का हो सकता है तो इसका जबाव यह है कि परब्रह्म का अपना या इस प्रकार का दोनों प्रकार का रूप नहीं हो सकता है क्योंकि एक बस्तु अपने विशेषरूप से जुदे प्रकार के विरुद्ध गुण होने के कारण दो प्रकार की नहीं हो सकती है । जैसी गति है वैसी स्थिति नहीं है उजाला सो ही अन्धेरा नहीं है । शीत ही उष्णता नहीं है । इसके ऊपर भगवान् शंकराचार्य कहते हैं, कि ईश्वर को साकार मान कर उसकी मूर्ति बनाना सर्वथा वेदविरुद्ध है; इसी पाद के चौदहवें सूत्रके भाष्य में शंकराचार्य साफ शब्दों में ईश्वर को निराकार ठहराते हैं ।

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ॥ वे० सू० अ० ३ पा० २ सू० १४ ॥

शंकरभाष्यम्

रूपाद्याकाररहितमेव हि ब्रह्मावधारयितव्यं। आदिमत् कस्मात्तत् प्रधानत्वात्। अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्, अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं, दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः यस्मादेवं जातीयकेषु वाक्येषु यथाश्रुतं निराकारमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्।

भावार्थः—रूपादि आकार रहित ब्रह्म है इस विषय में श्रुति के उदाहरण अस्थूलमनणुअह्रस्व आदि दिये हैं। अर्थात् वह ब्रह्म स्थूल नहीं है, अणु नहीं है, छोटा बड़ा नहीं है, बिना रूपनाश रहित दिव्य अमूर्तिमान् अज आदि विशेषण युक्त है, इसलिये ब्रह्म निराकार ही है।

युक्ति से भी ईश्वर साकार नहीं ठहरता है; क्योंकि दुनियां में छः वस्तुयें साकार हैं। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र। बाकी सब निराकार हैं। जो ईश्वर साकार होवे तो इन छः में से एक से बना होना चाहिये। कितने ही लोग "अग्निर्मूर्द्धा दिवः" इस मन्त्र से बतलाते हैं कि अग्नि उसका सिर है सूर्य चन्द्र उसके नेत्र हैं—इसी वेद के पुरुष सूक्त में लिखा है कि मनसे चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। परन्तु ये सब अलंकार हैं। जैसे नृसिंह के विषय में लोगों ने अलंकार न समझ कर ऐसी कल्पना की कि आधा सिंह और उसी प्रकार चित्रों में भी इसका शरीर बनाने लगे। परन्तु सच पूछो तो उसका अर्थ यह है "सिंह के समान बलवान् पुरुष" यजुर्वेद में कहा है "विश्वतश्चक्षुरुत" आदि य० अ० १८-१९ परमात्मा के सब जगह नेत्र, कान, हाथ, पैर, मुख हैं। जो यह मन्त्र साकार विषयका ही मानें तो सब जगह होने से एक जगह होने का निषेध हो गया। शतपथ में कहा है कि "बाहुर्वे बलम्" अर्थात् जहां २ "बाहु" शब्द आवे उसका अर्थ बल समझना चाहिए। साकार मानने वालों पर यह प्रश्न होता है कि जो सूर्य्य चन्द्र को नेत्र कहें, तो उसका सिर क्यों नहीं दिखाई देता? परन्तु जो लोग उसको व्यापक मानते हैं, उसके विषय में यह दोष नहीं आता है।

अब परमात्मा को कैसे जानना चाहिये इस विषय में यजुर्वेद में कहा है "वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा" इत्यादि य० अ० ३२ मं० ८.

महीधर भाष्यम्—वेन: पण्डितो विदितवेदान्तरहस्य: तत् ब्रह्म पश्यत् पश्यति जानातीत्यर्थ: । इत्यादि ।

उस ब्रह्म को "वेन" पण्डित जिसने वेदादि सत्य शास्त्रों का अर्थ जाना है वही जान सकता है अर्थात् अज्ञानी जन नहीं जान सकते हैं। ईश्वर को साकार मानने से उसकी व्यापकता में भी दोष आता है, इससे वह सर्वज्ञ तथा सर्वान्तर्यामी भी नहीं रह सकता है। साकार पदार्थ हमेशा नाशवान् होता है। शास्त्रों का यथावत् मर्म न जानने से लोग आजकल जैसे मन में आता है खींचातान करते हैं।

एक समय एक पण्डित जी रसोई करते थे, उनके पास एक शिष्य बैठा था और वहां दही भी रक्खा था। इतने में पण्डित जी ज़रा पानी लेने को गये और शिष्य को कह गये "कौवे से दही की रक्षा करना" अर्थात् देखना कि कोवा दही खा न जावे। शिष्य ने कहा कि अच्छा। पश्चात् कुत्ता आकर दही खा गया। गुरु जी ने आकर पूछा कि दही कहां गया ? उसने कहा कि कुत्ता खा गया। गुरु जी ने पूछा कि तूने रक्षा क्यों नहीं की ? शिष्य ने कहा आपने तो कौवे से रक्षा करने को कहा था। इसी प्रकार पूर्वा पर समझे विना अर्थ करने से भी अनर्थ होता है। यह यात सत्य तथा धर्मानुकूल है। इसलिए कहता हूँ। मुझे कुछ समाज का पक्ष अथवा सनातन धर्म सभा के साथ वैर नहीं है। क्यों कि समाज मुझे कुछ धन नहीं देता, वैसे ही सनातन धर्म मण्डल कुछ मेरी हानि नहीं करता है परन्तु ऋषियों के मत के अनुसार जो धर्म है वही मैं कहता हूं।

साकार मानने वालों में परस्पर विरोध होता है।

क्यों कि कोई कैसा ही स्वरूप बनाता है कोई कैसा ही। यह बात हम आज तक प्रत्यक्ष देखते हैं कि शैव और वैष्णवों में कितना विरोध है। इनके शिव और विष्णु पुराण भी एक दूसरे की निन्दा करते हैं। जो ईश्वर साकार हो तो उसके माता पिता कौन होंगे और

उनके लिये भी यही प्रश्न होंने, ऐसा होये से अनवस्था दोष आवेगा, इसलिये ईश्वर निराकार है। और उसी को मानना चाहिये, आजतक किसी जगह परब्रह्म की मूर्ति देखने में नहीं आई, हां रामकृष्ण आदि की तो अवश्य देखने में आती हैं। इत्यादि ऊपर के प्रमाणों से स्पष्ट मालूम होता है, कि ईश्वर निराकार है जो लोग मूर्ति को ही परब्रह्म मानते हैं वे तो अज्ञानी ही हैं।

कितने ही मनुष्य कहते हैं, कि पाषाणों में तो देव नहीं हैं, परन्तु भावना में देव हैं मैं कहता हूँ, कि जो भावना फल देने वाली हो तो पीतल में सोने की भावना करो, और उसको सोने के भाव से बेचो, और फिर देखो क्या हाल होता है। पूर्व मीमांसा में कहा है कि जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसे ही जानने तथा मानने को भावना कहते हैं, शायद कोई कहे कि और चीजों के बारे में ऐसा न हो परन्तु ईश्वर साकार है, इसलिये हमारी भावना फलीभूत होती है। कोई भक्त पंसारी के यहां मिश्री लेने गया पंसारी ने भूल में फिटकिरी दे दी व कहा कि लो ठाकुर जी के भोग लगा लो, पुजारी ने भी शुद्ध भाव से ठाकुर जी के भोग लगाया। फिर सब लोगों को प्रसाद बांटा। सब के मुंह कड़वे हो गये। मेरा कहना इतना ही है, कि जो भावना सच्ची ही होती तो उस पंसारी भक्त तथा पुजारी को सच्ची भावना करके भोग लगाने पर सब प्रसाद पाने वालों के दांत क्यों कड़वे हो गये ? इससे सिद्ध होता है, कि हमारी भावना से वस्तुओं के गुणो में किसी तरह का फेर नहीं पड़ सकता है, जैसे अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी को सांप समझने से उसमें जहर नहीं व्याप्त होता है वैसे ही जड़ को ब्रह्म समझने से जड़ पदार्थ ब्रह्म नहीं हो सकता। अब देखना चाहिए कि वैदिक समय में मूर्ति पूजा थी वा नहीं। यज्ञयागादि जो होते थे उनके ऊपर बहुत से ग्रन्थ बने हैं। वेदों में एक भी ऐसा मन्त्र नहीं है कि जिसमें पाषाण, अथवा काष्ठ, वा ऐसे ही, और किसी पदार्थ की मूर्ति बना कर पूजना कहा हो। भगवद्गीता में ही कोई मुझे बतावे तो में मैं आज ही आर्य समाज का पक्ष छोड़ कर सनातनमण्डल का अनुगामी हो जाऊं। कितने ही मनुष्य कहते हैं कि यदि परमात्मा

निराकार हो, तो उसका ध्यान कैसे हो, इसलिये उसके ध्यान के लिये मूर्ति होनी चाहिये। इसके उत्तर में इतना ही कहना है कि ध्यान का और मूर्ति का कुछ सम्बन्ध ही नहीं हैं, क्योंकि ध्यान के लिए सांख्य में कहा है—"ध्यानं निर्विषयं मनः" अर्थात् पांचों इन्द्रियो का विषयों से अलग होना ही ध्यान है। मूर्ति को देखना यह चक्षु इन्द्रिय का विषय है। तथा कृष्ण भी गीता के छटे अध्याय में कहते हैं कि:—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥
॥ गीता अ० ६ श्लोक ११ ॥

न बहुत ऊंचा न बहुत नीचा हो ऐसे आसन पर पहले कुश बिछावे पश्चात् मृग चर्म और ऊपर कपड़ा बिछा उस पर बैठ कर चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके आत्मशुद्धि के लिये परमात्मा (सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) का ध्यान करें। आजकल गीता बहुत माननीय समझी जाती है। उसमें भी जब मूर्ति का विधान नहीं है, तो फिर यह सीढ़ी का पहला दण्डा कैसे हो सकता है? कहीं भी इस प्रकार ध्यान करने का उपदेश नहीं है। साकार का न तो ध्यान होता है जैसे कि यह दीवाल है। उसको देख कर फिर आंखें बन्द करके मन में विचार करूं कि मेरे पास दीवाल है, और मैं अपना हाथ हिलाऊं। तो क्या यह कल्पित की दीवाल, मेरे हाथ को रोक सकेगी? क्या वह कह सकता है कि भूख अथवा बुद्धि किस प्रकार की है। और क्या कोई उनकी मूर्ति बना सकता है? जब बुद्धि आदि नित्य काम में आने वाली चीजों की मूर्ति नहीं बनाई जा सकती है तो फिर ईश्वर की मूर्ति कैसे बन सकती है?

वाल्मीकि रामायण में रामचन्द्र की मूर्ति पूजा करने का कहीं भी वर्णन नहीं आता है। हां ऐसा वर्णन तो है, कि दोनों काल सन्ध्या करते थे। कोई कहे कि मूर्ति पूजा को ज्ञान प्राप्ति का साधन

मानने में क्या हर्ज है? तो इसका जवाब तो वेदों ही में दे दिया है कि:—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याᳪं रताः ॥६॥

यजु० अ० ४० ॥

शङ्करभाष्यम् । अधुना व्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्दोच्यते । अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये असम्भूतिं सम्भवनं सम्भूतिः सा यस्य कार्यस्य सा सम्भूतिः तस्याः अन्या असम्भूतिः प्रकृतिः कारणमविद्या अव्याकृताख्या तामसम्भूतिमव्याकृताख्यां प्रकृतिं कारणम् अविद्याँ कामकर्मबीजभूतामदर्शनात्मिकामुपासते, ते तदनुरुपमेवान्धं तमोऽदर्शनात्मकं प्रविशन्ति । ततस्तस्मादपि भूयो बहुतरमिव तमः प्रविशन्ति, य उ सम्भूत्यां कार्यब्रह्माणि हिरण्यगर्भाख्ये रताः ।

जो प्रकृति अर्थात् जगत् के जड़ कारण की उपासना करते हैं, वे अज्ञानरूपी अन्धकार में हैं। और ईश्वर के स्थान में कार्य जगत् की उपासना करते हैं वे उससे भी विशेष अन्धकार में हैं और जड़ हैं। यजुर्वेद के अध्याय ३२ के तीसरे मन्त्र में कहा है कि:—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।

महीधरः—तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तु नास्ति । अर्थात् उस (परब्रह्म) की मूर्ति है ही नहीं।

आजकल पुजारी अथवा साधु ईश्वर के नाम से दान ले आलसी होकर पेट भरते हैं। और दरिद्रता तथा अनाचार बढ़ाते हैं। शीतकाल में ठाकुर जी के सामने आग की सिगड़ी (अंगीठी) रखते हैं। कोई विचार करे तो मालूम होगा कि पत्थर को कभी ठंड या धूप नहीं लगती है। यदि आपका कोई मित्र, आपके फोटो को इस तरह करे, तो आप उस पर कैसे गुस्से होंगे? जो मूर्ति को देखने से ज्ञान होता, तो रामचन्द्र जी की मूर्ति एक यूरोपियन के सामने (जिसने) उसका इतिहास कभी न सुना हो धरो क्या वह उसे देखकर जानेगा कि

वे ऐसे पराक्रमी सत्पुरुष थे। इसलिये ज्ञान का साधन मूर्ति नहीं परन्तु विद्या है। उपनिषद् में कहा है "आत्मा वारे द्रष्टव्यो श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" ब्रह्म को जानना सुनना तथा उसका निदिध्यासन करना चाहिये। आप दो बालकों को लेकर एक को शास्त्र पढ़ावें, और दूसरे को मूर्तिपूजा करावें फिर २५ वर्ष के हो जाने पर, उन दोनों से, ईश्वर के सम्बन्ध में प्रश्न करें और देखें, कि किसको ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान हुआ है। भला जो मूर्ति में ही ज्ञानमान हो, तो क्या सूर्य कुछ छोटी मूर्ति है कि जो दूसरी मूर्ति बनाते हो? सूर्य को देख के ही ईश्वर का ज्ञान क्यों नहीं होता। ईश्वर निराकार है, इसलिये प्रथम सृष्टि के निराकार पदार्थों का ज्ञान होना चाहिये, लोग ईश्वर को अपने विचारों के अनुकूल बनाना चाहते हैं। जो अन्धविश्वास रखना चाहते तथा जिनमें विचार शक्ति नहीं उनको मैं तो क्या ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते! कितने ही लोग इस विषय में अग्नि का दृष्टान्त देते हैं, कहते हैं कि जैसे अग्नि व्यापक है, इससे वह प्रकट भी हो सकती है? वैसे ही ईश्वर व्यापक होने पर भी एक जगह प्रकट भी हो सकता है। इसके उत्तर में शंकराचार्य ही कहते हैं, कि अग्नि-वर्षण का एक परिणाम है वह घट बढ़ सकती है। परन्तु ईश्वर एक रस व्यापक है। इसलिये उसमें घटती बढ़ती नहीं हो सकती है। अर्थात् वह किसी जगह विशेष रीति से प्रकट नहीं होता है। अग्नि की तरह ईश्वर में किसी तरह का विकार नहीं होता है क्योंकि वह निर्विकार है। इति शम्।

इसके पश्चात् सभापति माननीय **जज मि० चन्दावरकर के प्रकट किये हुए विचार।**

मि० चन्दावरकर ने भाषण के विषय में कहा कि स्वामी नित्यानन्द ने जो विचारयुक्त तथा विद्या से पूरित भाषण दिया है और बड़ौदे से खास यहां आये हैं, इसके लिये वे धन्यवाद योग्य हैं। आज-कल जिस प्रश्न पर विशेष चर्चा हो रही है, सो यद्यपि कोई नया विषय नहीं है, तथापि स्वामी नित्यानन्द ने तोड़ मरोड़ किये बिना तथा बिना पिष्ट पेषण के अपने विषय को जिस उच्च शिखर पर

पहुंचा दिया है, उसे श्रोताजनों को एकाग्रचित हो सुनने का मौका मिला है, और अच्छे विचार बनाने का अवसर मिला है। मूर्तिपूजा क्या है यह समझे बिना तकरार करना व्यर्थ है। लोकमत अनुसार ईश्वर की पूजा अनेक प्रकार से की जाती है। और इसी के कारण हिन्दू धर्म अनेक भागों में बट जाता है। जिस चीज में ध्यान लगाने से ऊंची स्थिति को चढ़े वही सच्ची मूर्तिपूजा है। बाकी अज्ञानी लोग मूर्ति में ही ध्यान किया करते हैं, इससे वे ऊंची स्थति को नहीं पहुँच सकते हैं। मूर्ति से कुछ भी परिपूर्णता नहीं आती है। जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षा में पास होने के लिये अच्छा टाइम टेबल बनाता है और उसके अनुसार नया अलार्म टाइमपीस घड़ी रखकर रोज क्रम अनुसार अभ्यास चलाता है। परन्तु यदि उसका मन ही निर्बल होवे तो यह सब इच्छा और टाइम टेबल भी किस काम का ? इसलिये एक ही वस्तु में परमेश्वर को मानने के बदले मन को ऊंची स्थिति में लाने के लिये परमेश्वर को पहचानना सीखना चाहिये। और जब एक ईश्वर में सच्चा अभिमान आ जाय तो फिर निरर्थक चीजों की जरूरत नहीं रहती है। तुकाराम जैसे सच्चे भक्त जब पंढरपुर में जाते थे तो वहां मन्दिरों के होते भी उनमें न जाकर अच्छी सभाओं में जाना पसंद करते थे इससे मस्तिष्क की शक्तियां खिल कर उन्नत होती थी ईश्वर भी कहता है, कि जैसे रूप में जैसे मन से तुम मेरे पास आओगे, उसी तरह से मैं तुम्हारे पास आऊंगा और जो तुम पाषाण के साथ आओगे तो मैं तुमको पाषाण दूंगा भगवद्गीता में कहा है कि ईश्वर तुम्हारे हृदय में रहता है। बड़े २ वीर पुरुषों के चरित्रों के दृष्टांत अपने सामने रखकर काम लेने से ही प्रजा की उन्नति होती है और जो तुम स्वयं मन वचन और कर्म से पवित्र होंगे तो तुम अपने परमेश्वर को प्राप्त कर सकोगे, ऊंचे शिखर पर पहुँचने के लिये ऊंचे आचरण ग्रहण करने में ही पूजा का आशय समाया है ऐसे विचार फैलाये बिना सिद्धि होने को नहीं इस बात पर देश के उदय का आधार है। और उसकी चर्चा होने से मैं खुशी हुआ हूँ, पश्चात् प्रमुख का उपकार मानकर सभा-विसर्जन की गई थी।

मनुष्य का कर्तव्य

श्री स्वामी नित्यानन्द जी के ता० २७-१०-१६६५ को लक्ष्मीविलास राजमहल वड़ौदा में दिये हुए व्याख्यान का सारांश—

आरम्भ में स्वामी जी ने ईश्वर प्रार्थना करके व्याख्यान देना **शुरू किया, उस समय श्री मान सरकार दिवान साहेब बहादुर, श्री मंत राव साहेब संपतराव गायकवाड़, स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी उपस्थित थे।**

स्वामी जी बोले, सृष्टि में हम दो वस्तु देखते हैं, एक जड़ व दूसरी चैतन्य, जड़ बोध रहित है, चैतन्य, अर्थात् चलन होना। जड़ वस्तु याने अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ से लेकर अत्यन्त प्रचण्ड पर्वतादि इनकी गणना निर्जीव पदार्थों में होती है, सूक्ष्म-दर्शक यंत्र की सहायता लेकर चैतन्य वस्तु का अब विचार करते हैं।

दृश्य पदार्थ कई एक निर्जीव हैं तो भी वे सृष्टि का नाश क्षण-भर में कर डालते हैं, जैसे अग्नि वायु जल वगैरह निर्जीव हैं, पतंग सजीव है तो भी वह दीपक पर झड़प मारकर अपने प्राण गमाता है, अग्नि की सहायता से आदमी अपने लिये अन्न पकाता है और उसके प्रकाश से अंधकार का निवारण कर लेता है, रेल-गाड़ी सरीखे लोकोपयोगी यंत्र में भाप उत्पन्न कर लेता है और उसके द्वारा यंत्र में गति उत्पन्न करता है और वह गति कई कोस तक गाड़ी चलाने के काम में आती है, तथापि उस यंत्र की गति रोकने का काम मनुष्य के बिना नहीं हो सकता।

मैं कौन हूँ ? इस प्रश्न का उत्तर मैं आत्मा हूँ। ईश्वर के अस्तित्व में अनेक मत हैं, कोई कहता है ईश्वर है ही नहीं, कोई कहता है यह जग ही ईश्वरमय है, कोई कहता है आकाश में ईश्वर है, किसी बालक पर यदि मेस्मेरिजम का प्रयोग किया जावे तो वह बालक अपना ज्ञान भूलकर उस प्रयोग करने वाले के स्वाधीन होकर रहता है, उसी प्रकार हम मनुष्यों पर संसार माया का प्रयोग हुआ है, इस-लिये हमारा कर्तव्य इस जगत् में क्या है और यह जगत् क्या वस्तु

है इस विषय में हम में अज्ञान भरा हुआ है, सूक्ष्म दर्शक यंत्र से अवलोकन करने पर बहुत सूक्ष्म वस्तुएं हमें नजर पड़ती है, परन्तु उनकी यथार्थ कल्पना हमें नहीं होती है, पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य मंडल साढ़े तेरा लाख गुना बड़ा है और वह अनंत तारागणों से युक्त रहता है, तात्पर्य इस जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई, इसका कर्ता कौन है यह विषय बड़ा गहन है, श्रुतियों-ने भी इस विषय पर अपने हाथ कानों पर रखे है, मनुष्य जाति के शरीर के परिणाम से उसकी आंखें बहुत छोटी हैं, और उन आंखों की पुतलियां तो और भी छोटी है, परन्तु उनसे वह इस जगत् में चाहे जितनी बड़ी वस्तु देख सकता है, उसी प्रकार यह जगत् इतना प्रचण्ड और विस्तृत है तो भी उसका याने, जगत् का ज्ञान उसे अपने ज्ञान चक्षु से हो जाता है, स्वप्न में भी यह जगत् जागृत अवस्था के सदृश हमें नजर पड़ता है, परन्तु उस जगत् को देखने वाली आंखें और ही हैं और वे ज्ञान चक्षु कहलाते हैं, इस विषय पर हर्बर्ट स्पेंन्सर वगैरा बड़े बड़े तत्ववेत्ता झगड़ रहे हैं, जो कुछ हो, हाल में हमें तो "मनुष्य का कर्तव्य" इस विषय पर विचार करना है, महाभारत और चरकादिकों के सर्वमान्य ग्रंथों में आत्मा का रक्षण प्रथम बतलाया गया है परन्तु मनुष्य जाति यह अपना कर्तव्य योग्य रीति से करना नहीं जानती, गरीब से लेकर महाराजा तक सब की एक ही अवस्था है, कोई मजदूर पैसे के लालच से अपनी शक्ति के बाहर बोझा उठाता है, और अपनी तबियत खराब करता है, उसी तरह कोई विद्यार्थी शीघ्र पास होने से और रोजगार के लोभ से अपनी शक्ति से बाहर परिश्रम करके अपना जीवन गवांता है, उसी प्रकार कई लोग शक्ति के बाहर काम करके और कोई लोग अधिक आहार करके, और ऋतुमान को न देखकर, अपनी प्रकृति खराब कर लेते हैं, रोगी होना प्रारब्ध में नहीं लिखा है, मनुष्य प्रमाद से अपने को रोगी बना लेता है, मनुष्य शरीर के अवयव घड़ी के चक्रों के सदृश है, और वे चक्र जब बिगड़ते हैं, तब वे पहिले की नाई दुरुस्त नहीं हो सकते, एक बार प्रकृति बिगड़कर रोगग्रस्त हो गई तो वह फिर औषध करने से भी पहिले

की सी नहीं होती, इसलिये प्रकृति निरोगी रखना मनुष्य का आद्य कर्तव्य है।

दूसरा कर्तव्य उद्योग करना, बहुत से लोग भाग्यवादी बन कर उद्योग नहीं करते परन्तु उनकी यह भूल है, बौद्ध व जैन धर्म में पुनर्जन्म माना है; उसी के अनुरोध से लोग भाग्य का अवलंब करते हैं कृश्चयन लोग प्रारब्ध नहीं मानते, जो लोग प्रारब्धवादी बन कर उद्योग करना छोड़ते हैं, उनकी स्थिति कच्चे घड़े के सदृश है, और उनकी गणना मूर्खों में होती है, जो-जो वस्तुयें अपने सामने आती हैं, वे प्रारब्ध से नहीं बनी हैं, उद्योग को छोड़ कर कोई पुरुष विद्वान् नहीं हुआ है, और भाग्य के भरोसे उसको विद्या नहीं आती, कितने परमहंस ऐसे होते हैं, कि उनके मुख में ग्रास छोड़ना पड़ता है परन्तु वह ग्रास चबाने की क्रिया उनको खुद करनी होती है अर्थात् उस ग्रास को चबा कर निगलना पड़ता है, दो सदृश विद्यार्थी, परीक्षा में प्रविष्ट होते हैं, और उनमें से एक पास और दूसरा नापास होता है, ऐसे अवसर में प्रारब्ध मानना पड़ता है और हमारे हिन्दू धर्मशास्त्रों में उसे बीजरूप माना है, परन्तु वह बीजरूप प्रारब्ध सदुद्योग रूपी भूमि में बोकर अच्छा फलवान् बनाना अपना कार्य है, केवल भाग्यवादी बनने से फल प्राप्ति नहीं हो सकती। उद्योग के विषय में हमारे हिन्दुस्थानी लोग बहुत पीछे पड़े हुये हैं, वे समुद्र यात्रा को धर्म के विरुद्ध मानते हैं, परन्तु यजुर्वेद अ० ६ में समुद्र पर्यटन लिखा है, राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण अमेरिका गये, और वहां से बकदालभ्य ऋषि को अपने साथ ले आये ऐसा महाभारत में लिखा है। मनुस्मृति में लिखा है कि पूर्व काल में ब्राह्मण सर्व वर्णों की कन्याओं से विवाह करते थे, काश्मीर देश में आज भी मुसलमानों का छुआ अन्न ब्राह्मण खाते हैं, बाल्मीकीय रामायण में परमपूज्य मार्कण्डेय ऋषि का भील स्त्री शबरी के हाथ से, रोटी खाना लिखा है, महाराज युधिष्ठिर के गृह में हजारों दासियां अन्न परसतीं थीं; और वैसे ही समुद्र पर्यटन धर्मशास्त्र में निषिद्ध नहीं माना है। जातिभेद की प्रथा चलाने से हमारे समाज में बड़ी हानि हो गई है, परन्तु ईश्वर के

यहां मनुष्य जाति एक मानी गई है, ऐसा न होता तो गाय, घोड़ा, भैंस, इन में जैसा भेद नजर पड़ता है, वैसा ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्यादिकों में भी पड़ता, बैल और भैंस इनके संयोग से सन्तति नहीं होती, परन्तु ब्राह्मण शूद्री इनके संयोग से सन्तति होती हैं, इससे यह सिद्ध होता है, कि जातिभेद जो मनुष्य समाज में प्रचलित हैं वे झूठ हैं, जाति, कर्म से मानी गई है, जैसे डाक्टरी का धन्धा करने वाले को डाक्टर कहते हैं, परन्तु उसके पुत्र को डाक्टर नहीं कहते, वैसे ही ब्राह्मण के पुत्र को ब्रह्मज्ञान हुये बिना ब्राह्मण नहीं कह सकते, तात्पर्य यह है कि, इस जातिभेद की प्रथा समाज में प्रचलित होने से हमारा देश अत्यन्त दुर्दशा से भर गया है, यह दुर्दशा उठाकर अपने देश भाइयों को सत्यमार्ग में लाकर छोड़ना यह अपना पवित्र और अवश्य कर्तव्य है, चलता है। सो चलनें देना, और भाग्य में जैसा लिखा है, वही होगा, ऐसा विचार करने से हमारा देश उच्च श्रेणी पर कभी आरोहण न करेगा।

तीसरा कर्तव्य यह है कि मनुष्योचित प्रकार से गृहस्थाश्रम करना, आजकल जो हम अपनी प्रजा को अशक्त देखते हैं, इसका कारण बाल विवाह है, इस बाल विवाह से अनेक अनर्थ हो रहे हैं, परन्तु उस तरफ किसी की दृष्टि नहीं है, ऋग्वेद तथा अथर्ववेदों में लिखा है, कि कन्या सुशिक्षिता होकर तरुणता प्राप्त करके विवाह करे, विवाह में कन्या का वय कम से कम १६ और पुरुष का २५ होना चाहिये, परन्तु आजकल इस वेद वाक्य के विरुद्ध शादियां हो रही हैं) ५ या ६ वर्ष की लड़की से और आठ या नौ बरस के लड़के का लड़की से विवाह हो जाता है, इस आठ या नौ बरस के लड़के का विवाह क्या है, इसका तनिक भी ज्ञान नहीं रहता, विवाह कार्य में स्त्री पुरुषों में होने वाले करार अथवा प्रतिवचन दोनों तरफ के उपाध्याय ब्राह्मण आपस में पढ़ लेते हैं, महाराजा मैसूर ने अपने राज्य में १२ वर्ष के भीतर की कन्या का विवाह होना सरकारी कायदे से रोका है, बालविवाह से बहुत तरह के नुकसान हैं, कन्या का गर्भाशय परिपूर्ण न होने के कारण उसकी सन्तान हीन वीर्य

होती है, ऐसा वैद्यक शास्त्रों का निश्चित मत है, तो भी हम लोग आंखें खोलकर इसका विचार नहीं करते !! देखो, सादे कपड़े में बर्फ रखने से उसका पानी हो जाता है और ऊनी कपड़े में रखने से वैसा का वैसा रहता है, इसी तरह हम लोगों के मन पर लोगों का निन्दा रूप उर्ण वस्त्र ऐसा दृढ़ बैठा है, कि सुधार रूप वायु का उस में प्रवेश नहीं होने पाता, परन्तु इस प्रकार से लोगों की निन्दा का विचार करने से देश की स्थिति कभी अच्छी नहीं होगी।

अभी थोड़े रोज पेश्तर आर्य समाज ने एक पुरुष को जिसने ख्रिस्ती धर्म को ंगीकार किया था, उसे फिर अपने धर्म में प्रविष्ट कराया, यह उदाहरण विचारने योग्य है, दूसरी बात यह है, कि लड़की का विवाह छोटी उम्र में होने से उसका विद्याभ्यास बिलकुल नहीं होने पाता, इस कारण उसकी सन्तान भी शिक्षा विहीन होती है, बच्चे को बालकपन में भी अच्छी शिक्षा मिलना योग्य है, परन्तु माता अशिक्षित रहने से वह उसको शिक्षा देने में असमर्थ होती है, माता और पिता दोनों ही सुशिक्षित होने चाहिये, तभी सन्तान सुयोग्य हो सकती है, छोटे बच्चे को अधिक मिठाई खिलाना अच्छा नहीं है, यदि, उसको वह देनी ही है तो विचार करके देनी चाहिये; यदि ऐसा न किया तो वह बालक मनमानी खा जायगा, और उसका परिणाम अनिष्ट होगा, इसलिये सुशिक्षित मा बाप के बालक की इच्छा को बिलकुल दबाकर रखना ठीक नहीं, उसकी बुद्धि बढ़ती जावे इस तरह से शिक्षा देनी चाहिये, माता पिताओं का उपदेश बालक पर बड़ा परिणाम कारक होता है, इस स्त्री शिक्षा के विषय में श्री मान् महाराजा साहब ने बड़ी कृपा की है, (तालियां) आज जो विषय पढ़ाये जाते हैं, वे निरुपयोगी होने से, उनमें सुधार होना चाहिये, उसी प्रकार उच्च प्रकार शिक्षण देने में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक हो गया है, उसके सीखने में भी बहुत काल व्यतीत हो जाता है, इसका भी कुछ विचार होना चाहिए। नीति शिक्षा में भी कुछ परिवर्तन होना अवश्य है, और उससे अनुभावात्मिक ज्ञान होना चाहिये, मुंह का जमा खर्च किसी काम का नहीं, पाठकगण निर्भय

होने चाहिये, अन्यथा वे उपदेश करने में असमर्थ होते हैं। उसी तरह सरकारी कामदार भी खुशामदी न होने चाहिये, उनके खुशामदी होने से, राजा को योग्य सलाह उनसे नहीं मिलती, और इस प्रकार से वे राजा के शत्रु बन जाते हैं, राजा को प्रजा का पालन निष्कपट भाव से करना चाहिये, और प्रजा को राजा का योग्य सन्मान करना चाहिये।

मनुष्य जन्म क्षरण में नाश होने वाला है, और अन्त में उसके साथ कुछ भी नहीं जाता है, मुहम्मद गजनवी ने अत्यन्त क्रूरता से अपना खजाना भरा और अंत समय में उसे देखकर खूब रोया, वह बोला इस द्रव्य के प्राप्त करने में मुझे कितना अन्याय और कितना भयंकर कृत्य करना पड़ा था और अब इसका उपभोग कोई दूसरा ही करेगा, तात्पर्य यह है कि अनीति से द्रव्योपार्जन करने की अपेक्षा नीति से चलकर गरीब रहना अच्छा है और वही सुख का साधन है, इस प्रकार श्री स्वामी जी ने ऊपर बतलाये हुवे विषय पर अपनी अस्खलित वाणी से श्रोतृसमुदाय को तन्मय करके छोड़ा।

यह भाषण १॥ घण्टे हुआ और तब तक श्रीमान् सरकार बड़ी उत्सुकता से बैठकर सब भाषण सुनती रही, महाराज साहब ने स्वामी जी को अपना पूर्व वृतान्त कहने को कहा, और स्वामी जी ने थोड़े मैं कुछ कहा, स्वामी जी बोले कि मैं श्रीमाली जाति का ब्राह्मण हूँ, और मैंने काशी जी में रहकर संस्कृत भाषा का अध्ययन किया, इसके सिवाय मैंने कुछ अंग्रेजी और फारसी भाषा भी पढ़ी है, लोगों की सेवा करना यह मेरे मन को निश्चय हो गया, और यह दीक्षा ले ली।

इस प्रकार से स्वामी जी का व्याख्यान और उनका आत्मचरित्र सुनकर महाराजा ने स्वामी जी की बिषयप्रतिपादन करने की रीति और उनके सभापाण्डित्य का वर्णन करके उनकी बड़ी प्रशंसा की और अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

—:॥:—

स्वाध्याय उपयोगी पुस्तकें

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	४॥)
वाल्मीकि रामायण (शुद्ध संस्करण)	१२)
उपनिषदार्य्य भाष्य (आठ उपनिषदें)	६)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	३)
गुरुदत्त लेखावली	२)
ओंकार निर्णय	१॥)
सृष्टि का इतिहास	२)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें	१।)
कर्त्तव्य दर्पण	१।)
आर्य समाज क्या है ?	।।।)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध	५)
दयानन्द चित्रावली	२॥)
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	॥)
नास्तिकवाद	॥)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
ब्रह्मचर्य जीवन-वीर्य नाश मृत्यु	।=)
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
ऋषि गाथा महाकाव्य	४)
संस्कार विधि विमर्श	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
वेदपरिचय (स्वामी वेदानन्द)	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्षयोग प्रदीपिका	३॥)
घर गृहस्थी	३॥)
गीत श्रद्धांजलि भजन	१)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक "	।=)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)
स्वामी दयानन्द और वेद	।)
वैदिक धर्म शिक्षा	।)
आर्य सत्संग गुटका	।-)
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)

चित्र चित्र चित्र

सचित्र जीवन घटना १५×२० ॥)

महर्षि दयानन्द की महत्ता २०×३० ॥)

मोटोज सा० १४×२२ मूल्य प्रत्येक ।-)

सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थनामन्त्र, संगठन सूक्त, यम नियम व्याख्या

मोटोज सा० ११×१४ मूल्य प्रत्येक ≡)

सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र, दीर्घ जीवन की प्रार्थना सत्यंवद धर्मं चर।

मोटोज ११×१४ प्रत्येक ।)

ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।